सफलता के मूल मंत्र

(प्रेरणाप्रद आलेख)

सफलता के मूल मंत्र

प्रो. हरिराम गुप्ता

अयन प्रकाशन, महरौली, नई दिल्ली

भूमिका

आज के भीड़-भाड़ भरे तथा व्यस्त जीवन में व्यक्ति गलाघोंट प्रतिस्पर्धा के कारण प्रायः असफलताओं का शिकार हो जाता है। फलस्वरूप हताशा, निराशा, अवसाद, तनाव आदि से ग्रस्त होकर वह हिम्मत हार देता है। कई बार इसके काफी भयंकर दुष्परिणाम भी देखने को मिलते हैं, जैसे- आत्महत्या, पढ़ाई बीच में ही छोड़ देना या व्यसनों और गलत असामाजिक कार्यों में लिप्त होना आदि।

कहते हैं असफलता सफलता की पहली सीढ़ी है। चीटी का उदाहरण हमारे सामने है, जो लाख बाधाओं/मुश्किलों के उपरान्त भी चढ़ती है, गिरती है तथा अपनी मंज़िल को पा लेती है।

कहावत है - '*गिरते हैं शह सवार ही मैदाने-जंग में, वे तिफ्ल क्या गिरेगे जो घुटनों के बल चलें।*' *अतः असफलताओं* से डरें अथवा घबरायें नहीं वरन् साहस से चुनौती समझकर इन्हे स्वीकारें तथा डटकर दुगने उत्साह एवं जोश से इनका सामना करें। सफलता अवश्य मिलेगी।

काफी समय से इच्छा थी कि समाज में व्याप्त कुरीतियों, परिस्थितियों आदि पर जनसाधारण, बुद्धिजीवियों, महिलाओं, वृद्धो एवं बच्चों के लिए एक पुस्तक लिखूं जो अब अयन प्रकाशन के सहयोग से लिख पाया हूं। इसके लिए प्रकाशक मित्र श्री भूपाल सूद का आभार व्यक्त करता हूं।

मैं अपनी पत्नी श्रीमती उर्मिला गुप्ता, एम.ए., बी.एड., पुत्रवधु श्रीमती कनुप्रिया गुप्ता, एम.ए. तथा सुपुत्र दीपक गुप्ता,

बी.ई.डी.बी.एम. का आभार व्यक्त करता हूं जिन्होंने इस पुस्तक के लेखन कार्य में वांछित सहयोग दिया।

आशा है पाठकों को पुस्तक पसंद आएगी तथा वे इससे लाभान्वित होंगे। पुस्तक में सुधार एवं गुणवत्ता हेतु पाठकों के सुझाव सादर आमंत्रित है।

धन्यवाद। जयहिन्द !

- प्रो. हरिराम गुप्ता
4 डी 98, जयनारायण व्यास कालोनी
पो. - बीकानेर - 334003
फोन : 0151 - 2233323

आलेख-क्रम

प्रथम खण्ड

द्वितीय खण्ड

तृतीय खण्ड

सफलता का मूल मंत्र सच्ची लगन तथा आत्मविश्वास है

हर व्यक्ति सफलता के सपने देखता है तथा इसे पाना चाहता है। सफलता में छिपी होती हैं, ढेर सारी उमंगे, प्रतिष्ठा तथा अपार खुशी। सफलता एक विशिष्ट घटना है। हम सभी चाहते हैं कि यह घटना हमारे जीवन मे बार-बार आए। सफलता प्राप्त करने के लिए परिश्रम, योग्यता, ईमानदारी, कार्य के प्रति निष्ठा, कार्य-कुशलता, संयम आदि कई गुणों का होना परमावश्यक है। इन सब में महत्वपूर्ण है – लक्ष्य प्राप्ति के लिए सच्ची लगन तथा आत्मविश्वास। यदि उद्देश्य प्राप्ति के लिए सच्ची लगन से प्रयास किए जाएं तो दुनिया की कोई भी ताकत सफलता प्राप्ति में बाधा पैदा नहीं कर सकती। आत्मविश्वास वह शक्ति है जिसके सहारे मनुष्य कठिन से कठिन परिस्थितियों तथा अनेकानेक विपत्तियों का मुकाबला करते हुए अपनी मंजिल तक पहुंच जाता है।

सच्ची लगन तथा आत्मविश्वास ऐसे दो गुण हैं, जो सफलता प्राप्ति में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। सच्ची लगन का उदाहरण थॉमस अल्वा एडीसन का है, जिन्होंने साठ हज़ार प्रयोग करके बल्ब का आविष्कार किया था। विज्ञान तथा चिकित्सा के क्षेत्र में जितने भी शोध हुए हैं, वे सब वैज्ञानिकों एवं डॉक्टरो की सच्ची लगन तथा पूर्ण आत्मविश्वास की देन है। शिक्षा, राजनीति, व्यापार, उद्योग, संगीत, कला इत्यादि प्राय: सभी क्षेत्रों में व्यक्तियों ने सच्ची लगन तथा आत्मविश्वास से सफलता अर्जित की है, जैसे- टाटा, बाटा, बजाज, डालमिया, मोदी आदि उद्योगपति शीर्ष स्तर पर पहुंचने में सफल हुए। किरण बेदी, कल्पना चावला, के.पी.एस. गिल, इन्दिरा गांधी, प. जवाहरलाल नेहरू, महात्मा गांधी आदि के उदाहरण हमारे सामने हैं जो राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय

स्तर पर ख्याति प्राप्त हैं। इसी प्रकार गायिका लता मंगेशकर, अभिनेत्री हेमामालिनी, अमिताभ बच्चन और अशोक कुमार इत्यादि भी विभिन्न क्षेत्रों में सच्ची लगन तथा आत्मविश्वास से ही सफल हुए तथा प्रतिष्ठा पाई। कार्यक्षेत्र कोई भी हो, कार्य के प्रति सच्ची लगन तथा पूर्णविश्वास के साथ शुरू किया गया कार्य अवश्य पूर्ण होता है तथा हम सफल होते हैं। आत्मविश्वास का जीवन में महत्वपूर्ण स्थान है। किसी भी कार्य को शुरू करने से पूर्व आत्मविश्वास का होना परमावश्यक है। "हम यह कार्य कर सकते हैं!" का विश्वास होना सफलता प्राप्ति के लिए परमावश्यक है। इसके सहारे ही निराशा में आशा की झलक दिखाई देती है। दुःख में भी सुख का आभास होता है। चीन की दीवार, मिस्र के पिरामिड, पनामा नहर, ताजमहल और अंतरिक्ष में मानव का प्रवेश एवं निवास आदि की योजनाएं आत्मविश्वास के ही उदाहरण है।

सच्ची लगन तथा आत्मविश्वास का गहरा तथा निकट संबंध है। जब हम कोई कार्य सच्ची लगन से करते है, तो हमें कठिनाइयां सुलझी हुई सी प्रतीत होने लगती हैं। इससे हमारे भीतर आत्मविश्वास जाग्रत होता है और कार्य की सफलता की संभावनाएं बढ़ जाती है। कार्य के प्रति सच्ची लगन से धैर्य पैदा होता है। जीवन लक्ष्य के प्रति निष्ठा से समर्पित हो जाता है। फलतः निराशा दूर होती है तथा आनन्द प्राप्त होता है। आत्मविश्वास शक्ति का स्रोत है। यह मनुष्य को सदैव ऊर्जावान बनाए रखता है।

हम अपने विषय में जैसी मान्यता बनाते हैं, लोगो द्वारा भी हमारे साथ वैसा ही व्यवहार किया जाता है। हम जैसा सोचते हैं वैसा ही बनते हैं। जो व्यक्ति अपने को मिट्टी समझता है, वह अवश्य कुचला जाता है। धूल पर सभी पांव रखते है परंतु अंगारों पर कोई पाव नही रखता। जो व्यक्ति कठिनतम कार्यो को भी अपने करने योग्य समझते है और अपनी शक्ति एवं क्षमता पर विश्वास रखते है, वे चारों ओर अपने प्रतिकूल परिस्थितियो को भी अनुकूल मे निर्मित कर लेते है। जिस क्षण व्यक्ति दृढ़तापूर्वक किसी कार्य को संपन्न करने की ठान लेता है, तो समझना चाहिए कि उसका आधा कार्य पूरा हो गया। मनस्वी व्यक्ति अपने संकल्पों को कार्यरूप में परिणित कर दिखाते है। उदाहरणार्थ- एवरेस्ट विजय, मानव का अंतरिक्ष में प्रवेश, सारे भारत की नदियों को जोड़ने की योजना, महत्वाकांक्षी सड़क राजमार्गो (National Highways)

का निर्माण, राष्ट्रीय ग्रामीण रोज़गार गारंटी योजना आदि। अतः सच्ची लगन तथा आत्मविश्वास के समक्ष कुछ भी असंभव नहीं है- विद्यार्थी के लिए परीक्षा पास करना, व्यापारी के लिए लाभार्जन तथा व्यापार-वृद्धि, खिलाड़ी के लिए श्रेष्ठ प्रर्दशन आदि। अपनी क्षमता, योग्यता तथा कुशलता का आकलन कर सच्ची लगन तथा आत्मविश्वास से शुरू कार्य में व्यक्ति को सफलता अवश्य मिलती है, यह मेरा विश्वास है। ☐

सफलता की कुंजी

जब हम किसी सफल व्यक्ति को देखते है, तो अनायास ही कह देते हैं- 'तकदीर का सिकन्दर है।' परंतु वास्तव में ऐसा नहीं होता है। कर्म तथा किस्मत (दो 'क') का जोड़ा है। यानी किसी की सफलता अथवा विफलता इन दो बातो पर निर्भर करती है। किस्मत यानी भाग्य साथ न दे तो भी व्यक्ति सफल नहीं हो पाता है। कर्म किए बिना किस्मत के सहारे बैठने से भी कुछ हासिल नहीं हो सकता। अतः आदमी को कर्म अवश्य करना चाहिए। गीता मे भगवान श्रीकृष्ण ने भी कहा है- 'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन्' अर्थात् कर्म करना व्यक्ति का अधिकार है परंतु फल के लिए बेचैन होना गलत है, फल देना, न देना *भगवान के हाथ में है।* इसी *कारण व्यक्ति भाग्य* को संवारने के लिए तथा अपने किए पापो का प्रायश्चित करने के लिए मंदिर, मस्जिद, गिरजाघर तथा गुरुद्वारे आदि धार्मिक स्थलो मे जाता है तथा उपासना करता है। तीर्थ-यात्रा पर जाने का आधार भी कर्मफल एवं स्तुति है।

इसके अतिरिक्त सफलता के लिए दृढ़-निश्चय, पूरी निष्ठा, लगन, अथक परिश्रम एवं संघर्ष इत्यादि कई मूल-मंत्र है। यदि व्यक्ति इनमें से किसी पहलू पर डगमगा जाता है अथवा धैर्य छोड़ देता है, तो सफलता मिलनी संदिग्ध हो जाती है। यदि व्यक्ति अपना लक्ष्य निर्धारित करके उक्त बातों को ध्यान मे रखते हुए कार्य करे तो सफलता उसे अवश्य प्राप्त होगी। यह धारण कि 'भगवान जो करता है, सब ठीक करता है' अथवा 'भगवान हमारी सहायता करेंगे' बिलकुल गलत एवं मिथ्या है। अंग्रेजी में एक कहावत है- *'God helps those who help themselves'* *यानी भगवान भी उसी की* सहायता करते हैं, जो अपनी सहायता स्वयं करता है।

सफलता अथवा फल प्राप्त होने में विलम्ब हो सकता है। भारतीय सस्कृति मे 'पुर्नजन्म' का उल्लेख आता है कि व्यक्ति अपने कर्मो का फल

अवश्य भोगता है, चाहे इस जन्म में अथवा अगले जन्मों में। अतः कहने का तात्पर्य है कि भगवान के यहां भी 'कर्मफल' का विधान है। यानी पाप की सज़ा अथवा दण्ड तथा पुण्य अथवा धार्मिक कार्यो का फल उन्नति या सफलता। कहावत है- 'कर्मगति टारे नाहि टरे' अर्थात् कर्म (भाग्य) में जो लिखा है, सो अटल् है; जैसे श्रीराम का चौदह वर्षो का वनवास, द्रौपदी का चीर हरण, महाभारत का युद्ध, भारत का विभाजन आदि। यह भी ठीक है कि प्रभु वंदना से उसमें कमी हो सकती है।

हम सभी जानते हैं कि भाग्य जन्म से लेकर मृत्यु तक व्यक्ति से जुड़ा है। भाग्य के कारण ही कोई राजा के घर पैदा होता है तो कोई गरीब परिवार में, कोई अंपग पैदा होता है तो कोई मूर्ख पैदा होता है, कोई अंधा, बहरा, गूंगा पैदा होता है। कालान्तर में कई व्यक्ति भयानक बीमारियो से ग्रस्त हो जाते हैं, जैसे- कैंसर, टी.बी., शूगर, एड्स, दमा इत्यादि। किसी व्यक्ति का जवान अथवा शिशु पुत्र उसके जीवन में ही मर जाता है अथवा किसी स्त्री का पति उसकी यौवनावस्था में काल-कवलित हो जाता है। यह सभी कुछ भाग्य का लेखा-जोखा है अथवा कहें कि दुष्कर्मो का परिणाम है, जो उन्हे इस रूप मे भुगतना पड़ता है। इसे हम दुःख अथवा कष्ट की संज्ञा देते हैं। महाकवि तुलसीदास ने भी कहा है-

'कर्मप्रधान विश्व करि राखा, जो जस करहिं सो तस फल चाखा।'

अर्थात् 'जैसी करनी, वैसी भरनी।' अतः व्यक्ति को सद्‌कर्म करने चाहिए, जैसे परोपकार, क्षमा, दया, सहानुभूति, प्रेम, वात्सल्य, स्नेह, प्रार्थना इत्यादि के द्वारा पुण्य अर्जित करना चाहिए।

व्यक्ति को अपने जीवन में सयम तथा धैर्य से काम करना चाहिए, जहा तक हो सके परनिंदा, क्रोध, आवेश, व्यभिचार एवं नशीले पदार्थो के सेवन से वचना चाहिए। कहावत है- 'जैसा मन होगा, वैसा ही विचार बनेगा-तथा व्यक्ति कर्म भी वैसा ही करेगा।' जहां तक हो सके चोरी, कपट, छल, फरेब, मिथ्या (झूठ बोलना) इत्यादि से स्वयं को कोसों दूर रखना चाहिए। उक्त सभी 'पाप' के मार्ग हैं तथा दुष्कर्मो के जनक तथा उन्हें बढ़ाने वाले है।

कहावत है 'जैसा अन्न वैसा मन' अर्थात् आदमी को अपना खान-पान तथा संगत अच्छी रखनी चाहिए। मांसाहारी व्यक्तियों तथा शाकाहारी व्यक्तियों की सोच में प्रायः वहुत अंतर होता है। अतः संतुलित पौष्टिक शाकाहारी भोजन

लेना श्रेष्ठकर है। व्यक्ति को अपने आस-पास के समाज (मित्र, संबंधी, सहयोगी आदि) में से भी अच्छे व्यक्तियों का चयन करके उनसे संपर्क बढ़ाना चाहिए, जिनके विचार एवं व्यवहार उत्तम हो। अच्छाइयो को अपनाना चाहिए तथा बुराइयों का त्याग करना चाहिए ताकि समाज मे सम्मान, प्रतिष्ठा आदि बने एवं बढ़े। बुरे व्यक्तियो की सगत से हानि होने का डर बना रहता है, जिससे व्यक्ति का मान-सम्मान सभी कुछ मिट्टी में मिल सकता है तथा उसे सज़ा तक काटनी पड़ सकती है।

सक्षेप मे व्यक्ति को अच्छे कर्म ही करने चाहिए, जिनका सुखद फल प्राप्त हो तथा व्यक्ति को सुख, आनन्द तथा शांति की प्राप्ति हो सके। भगवान पर पूर्ण विश्वास रखते हुए जो व्यक्ति सद्कर्म करता है, उसे सफलता अवश्य मिलती है तथा वह मान-सम्मान से भी नवाज़ा जाता है। कहावत है- 'भगवान के घर देर है परंतु अंधेर नही' अर्थात् कर्मफल मे विलम्ब हो सकता है परंतु वह मिलेगा अवश्य। अतः अच्छे कर्म करें तथा सुखमय जीवन बितायें।

'समय से पहले, किस्मत के बिना कुछ नहीं मिलता।' अर्थात् कर्मफल समय आने पर ही मिलता है। अतः उसकी चिंता न करें। □

भूलना सीखें, सुखी रहें

कहावत है कि 'वक्त बड़े से बड़ा घाव भर देता है।' युवावस्था में कोई स्त्री विधवा हो जाती है तो उस पर मुसीबतों का पहाड़ टूट पड़ता है। सामाजिक रीति-रिवाज तथा परम्पराएं उसे नारकीय जीवन जीने को मजबूर कर देती हैं। बुढ़ापे में किसी के पुत्र का पुत्र (पोता) मर जाता है, पत्नी मर जाती है, तो भगवान का कहर टूट पड़ता है। हाहाकार मच जाता है, काफी दारुण स्थिति हो जाती है। अकाल, बाढ़, भूकम्प, सुनामी, युद्ध, बम विस्फोट आदि से भी व्यक्ति मौत को प्राप्त करता है, जो क्षति अपूर्णीय होती है। परंतु धीरे-धीरे सब कुछ सामान्य हो जाता है। ऐसा क्यों होता है?

इसके पीछे भूलने की कला अथवा चमत्कार छुपा हुआ है। धीरे-धीरे व्यक्ति में सहनशक्ति, धैर्य, साहस का उदय तथा विकास होता है तथा जो घाव अथवा चोट उसे लगी थी, उसका दर्द कम महसूस होने लगता है। फलत: वह व्यक्ति घटना को भुलाना शुरू कर देता है तथा सामान्य क्रियाएं यथा खाना-पीना, बोलना, हंसना, सोना, सोचना, योजनाएं बनाना आदि शुरू कर देता है। पुनर्विवाह भी भूलने की कला का चमत्कार ही है।

अमेरिका के एक सुप्रसिद्ध डॉक्टर 'मेडीकल टॉक' नामक पत्र में लिखते हैं कि वर्षो के अनुभव के बाद मैं इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि दु:ख दूर करने के लिए 'भूल जाओ' से बढ़कर कोई दवा ही नही है। रोज़-रोज़ ज़िन्दगी में छोटी-मोटी चिंताओ को लेकर उदास मत रहो, इन्हें भूल जाओ, उन्हे पोसो मत, अपने दिल के अंदर उन्हें पाल कर मत रखो, उन्हें अंदर से निकाल फेको और भूल जाओ, इन्हें भुला दो।

दूसरों के प्रति तुम्हारे मन में घृणा, द्वेष, ईर्ष्या, दुर्भाव आदि के जो घाव हैं, उनमें भीतर ही भीतर मवाद भर रहा है और यह मवाद बढ़ रहा है तथा यह तुम्हारे ही शरीर, मन, प्राण में ज़हर फैला रहा है। क्यों न तुम इन तमाम

गलतफहमियों तथा दुर्भावनाओं को अपने दिल एवं दिमाग से निकाल फेंको, मन साफ रखो, उसे झाड़ू से साफ कर लो, हृदय से बहा डालो और तुम देखोगे कि तुम्हारे भीतर ऐसी पवित्रता, ऐसी सफाई आएगी कि तुम्हारा शरीर और मन पूर्णतः स्वस्थ तथा निर्मल हो जाएगा।

दुःख की चिंता, बीमारी की भयानकता की बाते न करो, न ही सुनो। स्वास्थ्य की, आनन्द की, खुशहाली की, प्रगति की, मनोरंजन की, खेल की, देश-विदेश की बातें करो और सुनो। तुम देखोगे कि तुम्हें स्वास्थ्य लाभ, आनन्द लाभ, प्रेम-प्यार, शांति, सफलता, सम्पन्नता प्राप्त हो रही है।

अतः भूलना सीखो। यह शरीर के स्वास्थ्य और मन की शांति का मूल-मंत्र है। अतः कोई दुःख यदि आपको हुआ है तो उसे गया समझो, भुला दो उसे, तभी आप सुखी तथा चिंता रहित जी सकोगे। अभावों तथा कष्टों से जूझना सीखो, उनका सामना करो, हल निकालो, विकल्प तलाशो, मार्ग अपने आप बन जाएगा। ईश्वरीय विपत्ति समझकर किसी से ईर्ष्या, द्वेष, घृणा, बैर, क्रोध, दुर्भाव न करो, यही सुखमय जीवन का सार है।

वस्तुतः भूलना सीखो तथा वर्तमान मे जीना सीखो। अपने व्यवहार एवं विचार को दूषित न होने दो। □

जीवन को दिशा देता है दृष्टिकोण

'गिलास आधा खाली है या आधा भरा हुआ।' वास्तविकता तो एक ही है, दृष्टिकोण अलग-अलग हैं। मेरा एक पड़ोसी 'क' सम्पन्न व्यक्ति है। एक पड़ोसी 'ख' सामान्य हैसियत का है। मैं दोनों के बीच की श्रेणी का हूं। वस्तुस्थिति तो एक ही है। अब 'क' की स्थिति की तुलना करके मैं खिन्न होता हूं या 'ख' से अपनी तुलना करके संतुष्टि अनुभव करता हूं, यह मेरे दृष्टिकोण पर निर्भर करता है।

कहावत है- 'मानो तो दैव, नहीं मीत का लेवा' अर्थात् भगवान की मूर्ति में यदि श्रद्धा एवं विश्वास है तो वह दैवतुल्य है, अन्यथा दीवार की लेवड़े (मलबे की परत) के समान है। यह व्यक्ति के दृष्टिकोण पर निर्भर करता है।

एक चलते व्यक्ति ने केला खाकर छिलका फेंक दिया। पीछे से आ रहे एक भिखारी ने वह छिलका उठाया और खुरचकर खाकर, फेंक दिया। उसके पीछे आ रहे एक और भिखारी ने वह छिलका चबाकर खा लिया। अब छिलका खुरचकर खाने वाला आगे वाले व्यक्ति की स्थिति को देखकर दुःखी होता है या छिलका चबाने वाले व्यक्ति की स्थिति देखकर अपनी स्थिति पर संतोष अनुभव करता है, यह उसके दृष्टिकोण पर निर्भर करता है।

किसी भी विषय-वस्तु, घटना, स्थिति के प्रति अपनाये जाने वाला दृष्टिकोण न केवल व्यक्ति के स्वयं के जीवन को बल्कि समाज, परिवार एवं समग्र देश को प्रभावित करता है। उदाहरणार्थ स्वामी दयानंद सरस्वती, राजा राममोहन राय, बाल गंगाधर तिलक आदि विभूतियों ने तत्कालीन समाज में व्याप्त बुराइयो जैसे- सती-प्रथा, बाल-विवाह, विधवा-विडम्बना आदि को समाप्त करने का दृष्टिकोण बनाया तथा समाज को संगठित करने का प्रयास कर इन बुराइयों को समाप्त करने में सफलता की। इसी प्रकार महात्मा गांधी

के नेतृत्व में देश की आज़ादी का दृष्टिकोण शक्तिशाली बना तथा भारत आज़ाद हुआ। अतः चाहे हमारे अपने जीवन का प्रश्न हो या संस्थान, समाज, परिवार और देश का प्रश्न हो, वर्तमान परिवेश में हमें यह सोचना आवश्यक है कि हमारे दृष्टिकोण की दिशा क्या है?

हमारी एक शिक्षक प्रोफेसर के साथ कई बार वार्ता होती है तो वे बड़े गर्व से बताते हैं कि उनके पढ़ाये हुए कई विद्यार्थी आज बड़े-बड़े पदों पर कार्य कर रहे है। यह उनके दृष्टिकोण का ही प्रभाव है कि वे इस तथ्य पर गर्व अनुभव करते हैं। दृष्टिकोण परिवर्तन करके वे यह सोचकर खिन्न भी हो सकते हैं कि वे स्वयं तो शिक्षक ही रहे जबकि उनके द्वारा पढ़ाये हुए विद्यार्थी उनसे अच्छे पदों पर, अच्छे वेतन, मान-सम्मान पर है। दृष्टिकोण का यह परिवर्तन स्वयं उनके सुखी जीवन को तो प्रभावित करेगा ही, इस देश एवं समाज के लिए प्रतिभाओं का निर्माण भी अवरुद्ध करेगा। यहां एक व्यक्ति का दृष्टिकोण संपूर्ण समाज के विकास को दिशा प्रदान करता है।

संसार के विभिन्न दार्शनिकों और विचारकों ने विभिन्न पहलुओं के आधार पर दृष्टिकोण की व्याख्या की है लेकिन साम्यवाद के प्रमुख प्रवर्तक कार्ल-मार्क्स एवं जर्मनी के विचारक हीगल द्वारा दी गई दृष्टिकोण की व्याख्या महत्वपूर्ण है।

कार्ल मार्क्स की व्याख्या के अनुसार किसी व्यक्ति के दृष्टिकोण के निर्माण में बाह्य एवं भौतिक घटक ही उत्तरदायी होते हैं। व्यक्ति का मनोमस्तिष्क कोरे कागज़ की तरह होता है। बाह्य परिवेश, घटनाएं, दृश्य इस कोरे कागज़ पर दृष्टि की कूची से दृष्टिकोण का चित्रण करते है और यहीं से व्यक्ति के सोचने-विचारने और कार्य करने की दिशा तय होती है।

जर्मनी के विचारक हीगल की व्याख्या कार्ल मार्क्स की व्याख्या से पूर्णतः विपरीत है। हीगल की व्याख्या के अनुसार व्यक्ति का मनोमस्तिष्क दृष्टिकोण के निर्माण में निर्णायक भूमिका निभाता है। एक सुंदर स्त्री को एक कलाकार अपनी कला पारखी नज़र से देखते हुए उसमें कला के विविध आयाम खोजता है। उसी स्त्री में एक दूषित मनोस्थिति का व्यक्ति वासना के पहलुओं को खोजता है। एक सात्विक व्यक्ति उसे शक्ति या भक्ति के प्रतीक के रूप में देखता है। एक कवि उसे अपने काव्य के माध्यम के रूप में देखता है। एक महिला के पीछे एक पुरुष चल रहा हो तो विभिन्न व्यक्तियों के

विभिन्न दृष्टिकोण हो सकते हैं जैसे- कुछ व्यक्ति उसे गुण्डा अथवा बदमाश (लोफर) समझें, कुछ उसे पति-पत्नी समझें, कुछ उसे भाई-बहन समझें आदि।

एक महिला पैदल यात्रा करते हुए काफी थक गई थी तो उसने एक राही (ऊंट वाले) से लिफ्ट का अनुरोध किया तो उसने साफ मना कर दिया किंतु थोड़ी दूर जाने के बाद राही का दृष्टिकोण परिवर्तित हो गया। उसने सोचा- महिला युवती भी है, सुदंर भी है, सफर आसानी से हंसते-बोलते बीत जाएगा अतः ऊंट को रोक कर वह प्रतीक्षा करने लगा। उधर युवती का दृष्टिकोण भी बदल गया कि अच्छा हुआ नहीं बैठी, वरना पता नही क्या हो जाता! परिणामस्वरूप जब वह वहां पहुंची और राही ने उसे ऊंट पर बैठने का अनुरोध किया तो युवती ने साफ मना कर दिया और कहा- "मेरी मंज़िल आ गई है।" कहने का तात्पर्य है कि भौतिक या दृष्टव्य परिवेश स्थगित रहता है और व्यक्ति की मनःस्थिति के अनुसार उस स्थगित परिवेश के प्रति दृष्टिकोण बनता है।

विभिन्न विचारकों और दार्शनिकों द्वारा दृष्टिकोण के संबंध में की गई व्याख्या को समग्र रूप मे देखें तो मूलतः व्यक्ति के जन्मगत संस्कारों, आस-पास के परिवेश, वातावरण व रहन-सहन, शिक्षा का स्तर व माध्यम एवं शिक्षक के आधार पर उसका दृष्टिकोण साकार होता है।

दृष्टिकोण का शाब्दिक महत्त्व तो इतना ही है कि हम किस वस्तु को किस स्वरूप में देखते है या हमारे मनोमस्तिष्क पर उसकी कैसी छवि बनती है। सूक्ष्म या शाब्दिक स्वरूप मे दृष्टिकोण का महत्व बहुत ही सीमित है लेकिन समग्र रूप में दृष्किोण का व्यापक महत्व है, जो व्यक्ति, समाज एवं देश को स्वरूप प्रदान करता है।

व्यापक रूप से दृष्टिकोण दो प्रकार का होता है- सकारात्मक दृष्टिकोण व नकारात्मक दृष्टिकोण। नकारात्मक दृष्टिकोण समाज को विकृत स्वरूप प्रदान करता है जबकि सकारात्मक दृष्टिकोण समाज को स्वस्थ स्वरूप प्रदान करता है। सकरात्मक या सही दृष्टिकोण न केवल स्वयं व्यक्ति के लिए बल्कि समाज के लिए भी उपयोगी होता है। एक व्यक्ति के सकारात्मक दृष्टिकोण से स्वस्थ मानसिकता का जन्म होता है। स्वस्थ मानसिकता स्वास्थ्य प्रदान करती है। व्यक्ति की स्वस्थ मानसिकता व सही दृष्टिकोण उसके परिवार

समाज, संस्थान एवं आस-पास के परिवेश पर भी सकारात्मक छाप छोड़ता है और जीवन को सही दिशा प्रदान करता है। आने वाली पीढ़ियों का दृष्टिकोण भी इससे प्रभावित होता है। इस प्रकार जीवन के प्रत्येक पहलू पर दृष्टिकोण का प्रभाव परिलक्षित होता है।

अब प्रश्न यह उठता है कि सही दृष्टिकोण को कैसे बनाए रखा जाए और नकारात्मक दृष्टिकोण को सकारात्मक दृष्टिकोण में कैसे परिवर्तित किया जाए?

जन्मगत संस्कारों से बने दृष्टिकोण को पूर्णतया परिवर्तित करना तो संभव नही, हा आस-पास के सही परिवेश, वातावरण, शिक्षा-दीक्षा आदि से जन्मगत नकारात्मक दृष्टिकोण को मोड़ प्रदान किया जा सकता है। जन्म के बाद परिवेश का तरीका, प्रारंभिक मातृ शिक्षा दृष्टिकोण के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है तो स्कूली शिक्षा का स्तर सगत, साहित्य एवं अध्ययन जैसी सात्विक प्रवृत्तियां दृष्टिकोण को पुष्ट बनाती हैं।

समय परिवर्तनशील है। समय के साथ-साथ व्यक्ति, समाज, संस्था और देश की गतिविधियों में उतार-चढ़ाव आते हैं। प्रत्येक स्तर पर अपनाया गया सकारात्मक दृष्टिकोण विपरीत परिस्थितियों मे भी विकास को सही दिशा प्रदान करता है जबकि नकरात्मक दृष्टिकोण पतन की ओर ले जाता है।

वाछित समय पर वाछित पदोन्नति न मिलने, इच्छित पदस्थापन न होने, अन्य संस्थानों की तुलना में सुविधाएं कम होने, अपने समकक्ष के आगे निकल जाने, किसी कारणवश अपेक्षित प्रोत्साहन न मिलने के कारण प्रायः एक कर्मचारी विशेष या एक समुदाय विशेष या एक संस्थान विशेष के कर्मचारी कुण्ठा या नैराशय से ग्रस्त हो जाते है। यह कुण्ठा या नैराशय क्यों? सभी अवसर, स्थितियां या गतिविधियां सदैव समान नहीं रहती। इस स्थिति मे सही दृष्टिकोण के अभाव में हमें कुण्ठा घेर लेती हं। परिवर्तन और उतार-चढ़ाव नैसर्गिक है और जो आज है वह कल से तो कम से कम बेहतर है, यह दृष्टिकोण व्यक्ति को कुण्ठा से बचाता है। विपरीत या असामान्य परिस्थितियों में नकारात्मक दृष्टिकोण कुण्ठा पैदा करता है, जो सभी के लिए नुकसानदायक होता है। इस स्थिति में विपरीत परिस्थितियां होते हुए भी सकारात्मक दृष्टिकोण कर्मचारी (व्यक्ति) समाज, संस्थान एवं देश के विकास की गति को प्रभावित नहीं करता।

धैर्य

आज मानव ने विज्ञान, कृषि, व्यवसाय, तकनीकी, दूर-सचार आदि सभी क्षेत्रों में अभूतपूर्व प्रगति कर ली है, विश्व छोटा होता जा रहा है, इससे साधनों मे अतिशय वृद्धि हुई है। सुख-सुविधा के साधनो में वृद्धि होने से मानव के सुख-शांति में वृद्धि होनी चाहिए किंतु इसके ठीक विपरीत मानव अधिक दु:खी है। वह अंशात है, तनावग्रस्त है। इसका क्या कारण है? उत्तर एकदम सरल है कि आज व्यक्ति ने क्रमिक विकास के प्राकृतिक सिद्धांत को भुलाकर कृत्रिम विकास का मार्ग अपना लिया है। उसने परिश्रम तथा धैर्य का कल्याणकारी मार्ग छोड़कर कोरी महत्वाकांक्षा का दामन थाम लिया है। वह भूल गया है कि प्रकृति के समस्त कार्य सुनियोजित ढंग से धीरे-धीरे होते है। प्राकृतिक विकास के नियम के अंतर्गत प्रत्येक चीज के फलीभूत होने मे एक निश्चित समयावधी तथा मौसम का होना अनिवार्य है। कोई भी चीज नियत समय से पूर्व फलीभूत नही हो सकती, चाहे हम कितनी ही जल्दबाज़ी क्यो न करे। किसी ने ठीक ही कहा है -

'धीरे-धीरे रे मना, धीरे सब कुछ होय।
माली सीचे सो घड़ा, ऋतु आये फल होय।।'

अर्थात् फल की प्राप्ति तक विचलित हुए बिना प्रतीक्षा करना ही धैर्य है।

किंतु इसके विपरीत आज का मनुष्य शीघ्रातिशीघ्र बिना परिश्रम तथा प्रतीक्षा किए अधिकाधिक उपलब्धियां अर्जित करने, धनार्जन करने हेतु आतुर तथा निर्भीक है। वह नहीं जानता है कि जल्दबाज़ी में अर्जित उपलब्धियां अल्पकालिक, अस्थायी व अकल्याणकारी होती है। दुर्भाग्य से मनुष्य के पास यह सब सोचने के लिए न तो विवेक बचा है और न ही समय। अध्यात्मरहित विज्ञान एवं तकनीकी विकास की अंधी दौड़ में मनुष्य विवेक-शून्य बन गया है। मनुष्य की इस प्रवृत्ति ने उसे सुविधा-भोगी, चंचल, अविवेकी, अधीर एवं

अंहकारी बना दिया है।

यह सर्वमान्य है कि प्रत्येक मनुष्य के जीवन में उतार-चढ़ाव आते है। हर प्राणी जीवन में सुख-दुःख, जीत-हार, सफलता-असफलता, सुविधा-बाधा, सरलता-कठिनाई, लाभ-हानि, यश-अपयश से रू-ब-रू होता है। यह पहले भी होता था और आज भी होता है तथा भविष्य में भी होता रहेगा। पहले मनुष्य धैर्यशील अधिक था, अतः दुःख, हार, बाधा, असफलता, कठिनाई, कष्ट, हानि, अपयश आदि की अधिक परवाह नहीं करता था, किंतु अब मनुष्य ने धैर्य का सहारा छोड़ दिया है। वह थोड़ी सी कठिनाई आने पर डर या घबरा जाता है। थोड़ी सी बाधा आने पर रुक जाता है और पलायन करके मार्ग बदल लेता है। असफलता मिलने पर निराश हो जाता है, हार जाने पर समर्पण कर देता है। तनिक सा दुःख आने पर रोना शुरू कर देता है। धैर्य के अभाव में वह भूल चुका है कि दुःखों के बाद सुख अवश्यम्भावी है, हार के बाद जीत तथा अंधेरे के बाद उजियारा जीवन की अनोखी परंतु सामान्य रीति है, जिसमे लगन, परिश्रम, प्रतीक्षा अपेक्षित है। लेकिन धैर्य अथवा धीरज (सबर) न होने के कारण वह परिश्रम व प्रतीक्षा की राह छोड़ चुका है। फलतः वह व्यर्थ में परेशान अथवा दुःखी है। यदि मनुष्य धैर्य से काम ले तो दुःख अपने नियमित प्रवाह से स्वतः निकल जाता है और कुछ समय पश्चात् पुनः सुख आ जाता है।

धैर्य का शाब्दिक अर्थ है धारण करने योग्य। अर्थात् धैर्य एक ऐसा गुण है जिसे प्रत्येक व्यक्ति को अपने जीवन मे धारण करना चाहिए। धैर्य के अभाव में साधन सम्पन्न मनुष्य का जीवन भी कष्टमय हो जाता है। धैर्य, शांत भाव से बिना किसी शिकायत के दुःखों को सहन करने का अद्‌भुत गुण है। जीवन में प्रतीक्षा के रहस्य को सिखाने वाला गुण है धैर्य। धैर्य सफलता की कुंजी है। धैर्यवान व्यक्ति गहन दुःखों मे भी विचलित अथवा उत्तेजित नहीं होता है। वह जानता है कि सुख एवं दुःख दोनों ही अस्थायी है।

धैर्य निराशा का भाव नहीं है। यह उदासीनता का भाव है। इसमे व्यक्ति दुःखों के प्रति उदासीन होकर उनकी तीव्रता कम करने मे सफल होता है। इससे उसका मानसिक सतुलन बना रहता है और वह दुःखो की कठिन घड़ी में भी उदासीनता के द्वारा अनुकूलनशीलता व सहिष्णुता का सहारा लेकर तनाव रहित है तथा अपनी संपूर्ण शक्ति को केन्द्रित कर दुःखों तथा मुसीबतों से लड़ने

व उन पर विजय पाने में सफल रहता है।

धैर्यशील व्यक्ति समझता है कि कर्म और फल के बीच एक समयावधि का अतराल अनिवार्यतः होता है, जो कर्म की प्रकृति के अनुरूप अलग-अलग होता है। मनुष्य की हड़बड़ाहट या जल्दबाज़ी से उसे कम नहीं किया जा सकता। धैर्यवान व्यक्ति यह भी जानता है कि मनुष्य का अधिकार केवल कर्म पर है, फल पर नहीं। अतः वह फल की चिंता किए विना कर्मरत रहता है, जो अन्ततः उसे सफलता भी दिला देता है। जव मनुष्य फल की चिंता करेगा ही नहीं तो प्रथमतः उसका मानसिक संतुलन बना रहेगा, दूसरे वह अपनी संपूर्ण शक्ति एवं सामर्थ्य से लक्ष्य-सिद्धि हेतु निरतर कर्म में लीन रहेगा। अतः उसकी सफलता निश्चित है।

धैर्य से मनुष्य में दिव्य मानवीय गुणों का विकास होता है। इससे मनुष्य में वाक्-संयम, सत्यनिष्ठा, मर्यादा-पालन, आत्मसंयम, गाम्भीर्य आदि का विकास होता है। मनुष्य का स्वभाव मृदु बनता है। धैर्य से मनुष्य का हाथ नियत्रित रहता है। उसमे आत्मिक बल बढ़ता है, जिससे सहिष्णुता के दुर्लभ महान गुण का विकास होता है। परिणामतः धैर्यवान व्यक्ति दूसरे व्यक्तियो के लिए आदरणीय व अनुकरणीय वन जाता है। धैर्य समझदारी का प्रमुख अवयव है।

धैर्य विश्व-शांति का स्तंभ है। आज की गला-काट प्रतिस्पर्द्धा ने प्रेम, सहयोग एवं विश्वास को गहरा धक्का पहुचाया है, इससे मनुष्य मे क्रोध तथा ईर्ष्या भाव का उदय तथा विकास हुआ है। इस विषम परिस्थिति काल में धैर्य ही शांति का एकमात्र मार्ग है। धैर्य से क्रोध का दमन होता है, इससे दर्प का दमन होता है। क्रोध का नाश करने मे धैर्य पैसिलिन के इंजेक्शन के समान है। प्रतिस्पर्द्धा के युग मे व्यक्ति दूसरे व्यक्ति की प्रगति से जलता है, जिससे ईर्ष्या वढ़ती है। लेकिन धैर्यशील व्यक्ति इसके विपरीत सोचता एवं करता है। वह दूसरे की प्रगति से ईर्ष्या नहीं करता है वरन् वह उसकी प्रगति से प्रेरित होकर अपनी प्रगति के लिए राह तलाशता है तथा सद्प्रयास करता है, जिससे परस्पर विश्वास, प्रेम एवं सहयोग का वातावरण विकसित होता है, जो गला काट प्रतिस्पर्द्धा पर अंकुश लगाने मे सहायक होता है। अंततोगत्वा विश्व शांति एवं मानव-कल्याण का मार्ग धैर्य से ही प्रशस्त होता है।

धैर्य का आशय निराशा से नही है और न ही पलायन या कर्तव्य-विमुखता

से है। प्रत्युत धैर्य दुःखों व विपरीत परिस्थितियों के प्रति उदासीनता का भाव है, जो मनुष्य को शांत-चित्त रहकर उनका साहस के साथ सामना करने तथा सहिष्णुता का विकास कर निरंतर निष्काम कर्म में लीन रहने की दिव्य प्रेरणा देता है। इसमें व्यक्ति सुखमय भविष्य के लिए आशान्वित रहता है।

धैर्य धारण करना अत्यंत कठिन है। धैर्यवान व्यक्ति पर कायरता, निकम्मापन, पिछड़ापन आदि के आरोप सुगमता से लग सकते हैं। इस सबके बावजूद भी धैर्यशील व्यक्ति उत्तेजित होकर अंशात नही होता। अपना मानसिक संतुलन नहीं खोता बल्कि अपने आत्मबल से सभी आरोपों को सहन कर शांत-चित्त अपनी लक्ष्य-सिद्धि में रत रहता है।

धैर्य की परीक्षा वड़ी कठिन होती है। सामान्य परिस्थितियों मे तो सभी शांत व सौम्य रहते है। परंतु कठिन परिस्थितियों में, घोर सकटकाल मे जो भी व्यक्ति शांत चित्त रहता है, चुपचाप कष्टों को सहनकर निरन्तर कर्म मे लीन रहता है, वही सच्चा धीर, वीर, गंभीर माना जाता है। गोस्वामी तुलसीदास ने भी धैर्य का परीक्षाकाल 'आपात' ही बताया है -

'धीरज धर्म मित्र अरु नारी।
आपत् काल परखिए चारी।।'

धैर्य एक उच्च गुण है, जो सतोगुण से पैदा होता है। इस गुण के बिना जीवन में भौतिक व आध्यात्मिक सफलता असंभव है। धैर्य बड़ा ही कटु होता है किंतु साथ ही इसका फल भी अत्यधिक मधुर होता है। अतः प्रत्येक मनुष्य द्वारा धैर्य का अनुशीलन न केवल उसके स्वयं के हित में है, अपितु समूची मानव सभ्यता के लिए कल्याणकारी है।

इतिहास के अनेक उदाहरण प्रमाणित करते है कि धैर्य और विवेकपूर्ण परिश्रम से ही जीवन की महानतम उपलब्धियां अर्जित की जा सकती है। धैर्य ने ही मोहनदास करमचंद गांधी को शक्तिशाली ब्रिटिश साम्राज्य से लड़ने की शक्ति प्रदान की और उन्हें महामानव महात्मा गांधी बना दिया। धैर्य से ही अब्राहम लिंकन अमेरिका के राष्ट्रपति बने। धैर्य ने लालबहादुर शास्त्री को प्रधानमंत्री बना दिया। धैर्य से ही सर सैय्यद अहमद खान अलीगढ़ में विश्वविख्यात मुस्लिम विश्वविद्यालय स्थापित करने में सफल हुए। धैर्य से ही पांडव अपना खोया हुआ राज्य पुनः प्राप्त करने में सफल हुए। धैर्य से ही महानतम वैज्ञानिक एवं अभियांत्रिक सफलताएं अर्जित हुई है।

मनुष्य को अपने व्यक्तित्व में धैर्य का विकास करने के लिए अग्रांकित कतिपय सुझाव सहायक सिद्ध हो सकते हैं -

1. क्रमिक विकास के प्राकृतिक सिद्धान्त में अटल विश्वास
2. सत्साहित्य का अनुशीलन
3. अपने इष्ट देव का नित्य स्मरण।
4. गोस्वामी तुलसीदास की इन पंक्तियों का स्मरण -

   'हानि-लाभ, जीवन-मरण,
   यश-अपयश, विधि हाथ।'
5. प्रतिदिन गीता के इस श्लोक का चिंतन -

   'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन्
   मा कर्मफल हेतुर्भूर्मा ते संगोऽस्त्वकर्मणी।'
6. अग्राकित मंत्रों का निरंतर जाप करना

   ऊं धैर्य
   ऊं शांतिः
   ऊं नमः शिवायः।

धैर्यशील व्यक्ति बनने के लिए खान-पान, रहन-सहन तथा संगति का भी काफी महत्व है। मासांहारी व्यक्ति शाकाहारी व्यक्ति की तुलना में कम धैर्यशील होता है। सादा जीवन, उच्च विचार रखने वाले व्यक्ति अधिक धैर्यशील होते है। संगति (मित्र-मंडली) का व्यक्ति के विचारो तथा कर्मो पर काफी प्रभाव पड़ता है। मादक-पदार्थों का सेवन करने वाला व्यक्ति ज़रा सी बात पर उत्तेजित हो जाता है तथा धैर्य खो देता है। अहिंसा व्रत का पालन करने वाला सदाचारी एवं विनम्र व्यक्ति धैर्यवान बनता है तथा जीवन में सफलता के शिखर पर पहुंच सकता है। ❑

व्यावहारिक ज्ञान : सहानुभूति

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। वह समाज मे जन्म लेता है, बड़ा होता है तथा जीवनपर्यन्त समाज से जुड़ा रहकर अंत में मृत्यु को प्राप्त होता है।

मानव जीवन में सहानुभूति का बड़ा महत्व है। चाहे मानव जगत हो अथवा पशु/पक्षी जगत यदि इसमें से सहानुभूति को निकाल दिया जाए तो शायद सामूहिक जीवन का आनंद ही समाप्त हो जाए। पक्षी/परिन्दे खुले आकाश में झुंड बनाकर विचरण करते है। गाय, बकरी, भेड़ भी समूह मे रहना पसंद करते हैं। आधुनिक समाज में परस्पर सहानुभूति का अक्सर अभाव दिखाई देता है, कारण पाश्चात्य सभ्यता एवं संस्कृति का प्रभाव अथवा सीमित साधन, मंहगाई, बेरोज़गारी कोई भी हो सकता है। फलस्वरूप आत्म-केन्द्रित तथा एकाकी जीवन शैली का विकास हो रहा है। सामाजिक अशांति के लिए सहानुभूति की कमी काफी हद तक उत्तरदायी है। बड़े शहरों मे मानव जीवन इतना व्यस्त तथा स्वार्थी हो चुका है कि पड़ोस में कौन रहता है- इस तक का पता नहीं है। पड़ोस में चोरी, बलात्कार हो जाने पर भी पड़ोसी को खबर नहीं लग पाती है। बहाना समयाभाव अथवा अतिव्यस्तता का दिया जाता है। यह स्थिति समाज को विखंडन की ओर ले जा रही है जो विचारणीय एवं दु:खदायी है। ऐसी परिस्थिति में सहानुभूति ही सामाजिक एकता और सगठन के लिए रामबाण औषधि के रूप में काम आ सकती है।

सहानुभूति क्या है? सहानुभूति व्यक्ति के जीवन में उसकी मानसिक प्रवृत्तियों को भावनात्मक पक्ष से जोड़ती है। अतः सहानुभूति के द्वारा एक व्यक्ति दूसरे व्यक्तियों को अपनी ओर आकर्षित कर सकता है एवं स्वयं भी सहानुभूति के कारण दूसरो की ओर आकर्षित हो सकता है। सहानुभूति वह प्रवृत्ति है, जिसमे एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति या व्यक्तियो के भावों और संवेगों को महसूस करता है। यह प्रवृत्ति प्रायः साथी व्यक्तियों जैसे- मित्रों तथा

रिश्तेदारों के लिए पाई जाती है। वास्तव में व्यक्ति सहानुभूति में दूसरे व्यक्ति की परिस्थिति मे अपने आपको समझता है। उदाहरणार्थ किसी की चोरी होने, दुर्घटना होने, बीमार पड़ने, मृत्यु होने अथवा परीक्षा या साक्षात्कार में असफल होने आदि पर उसके सबंधियों को मित्रवत हौसला देना अथवा ढाढ़स बंधाना ही सहानुभूति है। इसलिए अक्सर कहा जाता है- 'सामने वाले के जूते में पांव रखकर जूते काटने का दर्द/पीड़ा महसूस करना ही सहानुभूति है।'

सहानुभूति उत्पन्न करने के लिए कल्पना-शक्ति तथा सवेगिकता दोनों का होना परमावश्यक है। दोनों के अभाव में सहानुभूति का उत्पन्न होना कठिन है। अक्सर यह देखा गया है कि व्यक्ति में जितनी अधिक कल्पना-शक्ति और सवेगिता होती है, उसमे सहानुभूति भी उतनी ही जल्दी प्रभावी एवं अधिक उत्पन्न होती है। वास्तविकता यह है कि कल्पना के द्वारा व्यक्ति अपने आपको दूसरे व्यक्ति की परिस्थिति में रखता है और दूसरे व्यक्ति के समान अनुभव करता है। बिना कल्पना के वह दूसरों से निकटता स्थापित नही कर सकता है। कल्पना और संवेगिता के सहारे वह संवेदनशील बनकर उन्हीं भावों और संवेगो का अनुभव करने लग जाता है।

सहानुभूति का तीसरा तत्व भावनाओं का पूर्व अनुभव है। जो व्यक्ति एक बार एक परिस्थिति से गुज़र चुका है, वह कल्पना के सहारे सरलता से उस परिस्थिति में पहुच सकता है और परिस्थिति के अनुसार अनुभव कर सकता है। जैसे- कोई व्यक्ति पूर्व में आर्थिक तंगी (बेरोज़गारी के कारण अथवा सीमित साधनों के कारण) देख चुका हो तो उसे ऐसे व्यक्तियों की समस्याओं तथा जीवन-स्तर आदि का सहज अनुमान हो जाता है। पूर्व अनुभव जितने अधिक होते है, सहानुभूति की सभावना उतनी ही अधिक तथा प्रबल होती है। अत: हम पूर्व अनुभवो के आधार पर ही दूसरे व्यक्ति की केवल वेदना/पीड़ापूर्ण रोने की आवाज़ सुनकर अथवा आंसुओं को देखकर ही समझ लेते है कि अमुक व्यक्ति दु:खी है और हम उसके प्रति सहानुभूति प्रकट करने लग जाते हैं तथा यथासभव आवश्यक सहायता एवं सहयोग देने हेतु भी तत्पर हो जाते है। कुछ परिस्थितियों मे सहानुभूति के कारण ही एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को न केवल सांत्वना अथवा संबल बंधाता है अपितु आर्थिक सहायता भी देता है। अत: सहानुभूति सामाजिक एकता, समरसता, मधुरता एवं संगठन हेतु परमावश्यक है।

सहानुभूति के लाभ

1. सामाजिक समरसता : सहानुभूति वह सीमेंट है, जो सभी समाजों को एक सूत्र में बांधती है तथा मधुरता, शांति एवं भाईचारा का वातावरण बनाती है। यह समूह के सभी सदस्यों के व्यवहारों एवं क्रियाकलापों में उनके सामाजिक जीवन में समरसता घोलती है।

2. परस्पर मित्रता की आधारशिला है : सहानुभूति मानव जीवन में व्यवहार का स्रोत है। यह जीवन में एकरूपता, सरसता एवं एकता का निर्माण करती है। कल्पना कीजिए, यदि किसी समाज के सदस्यों में सहानुभूति कम हो या बिल्कुल नहीं हो, तो शायद उसमें परोपकारी व्यवहार, निस्वार्थ सेवा और पारस्परिक सेवा एवं सहयोग संबंधी व्यवहार का भी अभाव होगा। अत: यह कहा जाता है कि सहानुभूति समाज में उपकारी कार्यो का भी मूल आधार है तथा मित्रता की आधारशिला है।

3. परस्पर सहयोग का कारक : केवल मौखिक सहानुभूति समाज मे उपकारी कार्यो की आधार शिला नहीं है बल्कि सक्रिय सहानुभूति अधिक महत्वूर्ण है, जिसमें एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को सहयोग या सहायता देने के लिए तत्पर होता है। वह केवल सहानुभूति ही प्रकट नहीं करता वरन् दु:खी व्यक्ति के दु:खों को दूर करने अथवा कम करने का प्रयास भी करता है। केवल छोटी-सी कल्पना करें, यदि सहानुभूति को अपने सामाजिक जीवन से निकाल दें तो हमारे कष्टों और दु:खों का कौन साझीदार होगा और हमारी मुसीवतों में हमें कौन सात्वना देगा।

4. आवेगों पर नियंत्रण : सहानुभूति के द्वारा हम दूसरे व्यक्ति की भावना को समझते हैं तथा उसके और निकट हो जाते हैं। फलस्वरूप अकारण क्रोध, ईर्ष्या आदि घातक आवेगों पर नियंत्रण पा लेते है। सहानुभूतिपूर्वक सामाजिक व्यवहार के द्वारा हम दूसरों का पक्ष ध्यान से सुनते और समझते है और हमारा व्यक्तित्व संवेदनशील होता है। इस प्रकार हमारे आवेग स्वत: समाप्त हो जाते है और सहानुभूति के द्वारा व्यक्ति न केवल दूसरों को वरन् परोक्ष रूप से स्वयं के आवेगों पर नियत्रण करके खुद की भी मदद करता है।

सहानुभूति के महत्व के संबंध में जितना भी कहा जाए, कम ही होगा। व्यवहार विज्ञान के सभी पहलुओं मे सहानुभूति का गहरा असर दिखाई देता है। प्रभावी अन्तर्व्यक्ति संबंध, अभिप्रेरणा शक्ति और टीम भावना के विकास

के लिए सहानुभूति का बहुत योगदान है। इसके द्वारा हम दूसरे व्यक्ति को निष्काम भाव से पढ़ने का प्रयास करते हैं और काल्पनिक शक्ति के द्वारा परहित के मार्ग पर समाज को अग्रणी कर सकते हैं।

गरीबों, असहाय व्यक्तियों, अपंगों तथा अभावग्रस्त बच्चो एवं व्यक्तियों की सेवा तथा आर्थिक सहायता करना सहानुभूति की ही देन है, जिसके लिए गैर-सरकारी संस्थाएं प्रयासरत है। ये संस्थाएं स्वास्थ्य-शिविरों, आश्रमों, चिकित्सालयों, स्कूलों आदि के माध्यम से समाज सेवा मे जुटी हुई हैं।

अंत में केवल इतना ही - सहानुभूति सामाजिक उत्थान हेतु परमावश्यक है, जिससे मित्रता तथा घनिष्ठता विकसित होते है तथा सामाजिक शांति एवं संगठन को बल मिलता है। अतः सहानुभूति सामजिक उत्थान का सशक्त माध्यम है। ☐

सकारात्मक सोच ही सफलता का महत्वपूर्ण पहलू है

कहावत है- 'जैसा आप सोचते हैं, वैसा ही बनते हैं।' (As you think, so you become) तात्पर्य है कि यदि किसी कार्य को शुरू करने से पूर्व हमारी सोच कार्य के प्रति सकारात्मक है, तो सफलता की संभावनाएं अधिक होती हैं। हम देखते हैं, जीवन में कोई व्यक्ति लगातार कामयाब क्यो होता जाता है- जबकि कोई अन्य व्यक्ति एक के बाद एक असफलता अपने नाम क्यो दर्ज कराता है? यह सही है कि व्यक्ति की कार्यकुशलता, भाग्य, योग्यता, अनुभव, कार्यक्षमता आदि भी सफलता अथवा असफलता के निर्धारण मे महत्वपूर्ण तत्व हैं परंतु सोचने का नज़रिया सकारात्मक अथवा नकारात्मक होना भी व्यक्ति की सफलता को प्रभावित करता है। प्रायः देखने में आया है कि एक समान सामाजिक, भौगोलिक, राजनैतिक, आर्थिक, शैक्षणिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियो में जन्मे व बड़े हुए व्यक्तियों में से क्यों एक सफलता के शिखर पर पहुंच जाता है, जबकि दूसरा ज़मीन से ऊपर उठ ही नहीं पाता। निश्चय ही यह अंतर व्यक्ति के चिंतन अथवा सोच पर निर्भर करता है। जिस व्यक्ति की सोच सकारात्मक (जो उसके चारों तरफ के वातावरण, जीवन के अनुभव, शिक्षा का स्तर, पारिवारिक पृष्ठभूमि, संगी-साथियों अथवा मित्रों एवं रिश्तेदारों के व्यवहार आदि से बनती है, अथवा बिगड़ती है) होती है, तो सफलता उसके पास स्वतः चली आती है। सकारात्मक सोच व्यक्ति को इस प्रकार से प्रभावित करती है -

1. कार्य के दबाव में कमी : नकारात्मक सोच वाले व्यक्ति हमेशा बिना किसी वजह परिणाम वाली दिमागी कसरत में लग जाते है, जिससे उनके दिमाग का संतुलन नहीं रह पाता तथा कार्य में रुचि अथवा लगन भी पर्याप्त

नहीं होती।

2. प्रभावी व्यक्तित्व : व्यक्ति का व्यक्तित्व यदि प्रभावित करने वाला या आकर्षक हो तथा सोच सकारात्मक हो, तो सफलता की संभावनाएं काफी अधिक हो जाती हैं। ऐसे व्यक्ति के अन्य व्यक्ति सहभागी एवं सहयोगी सुगमता से वन जाते है।

3. समय की वचत : हमारे देश में ज्यादातर लोग अधिकांश समय अपने हित में सकरात्मक नहीं, वल्कि दूसरों के लिए नकरात्मक सोचने में व्यतीत करते है। निश्चय ही इस कारण से उन्हें अपने लिए कुछ करने हेतु समय का अभाव रहता है। सकारात्मक सोच वाले व्यक्ति से प्रत्येक व्यक्ति संवंध रखना चाहता है। जिसे व्यावसायिक भापा में 'लाइज़न' कहते हैं। 'लाइजन' के माध्यम से व्यक्ति दूसरे व्यक्ति से काम करवाने में अपेक्षित सहयोग प्राप्त कर सकता है।

4. कार्य-क्षमता में वृद्धि : सकरात्मक सोच वाला व्यक्ति हमेशा कुछ करने तथा अच्छा करने के वारे में सोचता है। ऐसे में कार्यक्षमता अथवा उत्पादकता मे वृद्धि होती है।

5. गुणवत्ता वृद्धि : सकारात्मक सोच ही व्यक्ति को श्रेष्ठतम वनने या बनाने की प्रेरणा देती है। ऐसी सोच वाला व्यक्ति स्वस्थ प्रतियोगिता के माध्यम से उत्तरोत्तर विकास के शिखर पर पहुंचने की महत्वाकांक्षा रखता है। इसके लिए वह गुणवत्ता वृद्धि पर अपनी पूरी शक्ति एवं सामर्थ्य लगा देता है।

6. संस्था के प्रति वफादारी में वृद्धि : सकारात्मक सोच वाले व्यक्ति के सामान्यत: शत्रु कम होते है तथा उसकी संस्था के प्रति समर्पित और वफादारों की सख्या बढ़ती जाती है।

7. व्यवसायिक क्षेत्र में प्रतिष्ठा : व्यक्ति की सोच ही उसे अपने क्षेत्र मे प्रतिष्ठा अथवा सम्मान दिलवाती है। इसी के सहारे उसे नेतृत्व का मौका व सफलता मिलती है।

8. दृढ़ इच्छाशक्ति : जो व्यक्ति सभी के प्रति आशान्वित होता है अथवा सकारात्मक सोच रखता है अर्थात् किसी का बुरा नही सोचता तथा वस्तुनिष्ठ व्यवहार करता है, उसकी इच्छाशक्ति स्वत: दृढ़ और रचनात्मक हो जाती है।

9. शीघ्र निर्णय : सकारात्मक सोच वाले व्यक्ति के मार्ग में बाधाएं,

परेशानियां एवं उसकी बुराई तथा बुरा करने वालों की संख्या काफी कम अथवा शून्य होती है। वह निर्धारित मापदंडों के अनुसार कार्य करता है, इसलिए उसके निर्णयों में विलम्ब नहीं होता।

कहावत है- 'रोता जाये, मरे की खबर लाये' अर्थात् नकारात्मक सोच वाले व्यक्ति से निराशा ही मिलती है। उसके स्वभाव में झुंझलाहट, प्रतिशोध, हीन-भावना, निराशा, अनावश्यक गुस्सा, कुतर्क, बहानेबाज़ी, परनिंदा, द्वेष, कुंठा आदि जैसे अवगुण घर कर जाते हैं, जो अन्ततः असफलता को ही जन्म देते है।

अब महत्वपूर्ण प्रश्न है कि सकारात्मक सोच को कैसे विकसित किया जाये? इसके लिए औपचारिक प्रशिक्षण एक सीमा तक सहायक हो सकता है। इसके अलावा उत्तरदायित्व को समझने, मूल कारण को भूलने, यथार्थ को स्वीकारने, मुख्य धारा में प्रवेश करने, यथार्थपरक महत्वाकांक्षी होने, यथानुसार प्रशिक्षण देने, नकरात्मक सोच वाले व्यक्तियों से दूर रहने, व्यसनों से बचने, सुरुचिपूर्ण कार्यों को हाथ में लेने आदि से सकारात्मक सोच को बल मिलता है तथा सफलता की गारंटी की संभावना काफी समीप तथा निश्चित हो जाती हैं। अतः सकारात्मक सोच ही सफलता पाने के लिए परमावश्यक है। ❑

सफलता की महत्वपूर्ण कड़ी है उत्साहवर्द्धन

किसी भी कार्य में सफलता प्राप्ति के लिए उत्साहवर्द्धन की बढ़ी महत्वपूर्ण भूमिका है। किसी भी व्यक्ति की महत्वकांक्षा की पूर्ति में दूसरे व्यक्ति का सहयोग उत्साहवर्द्धन के रूप में काफी सहायक होता है। यह व्यक्ति को अधिकाधिक कार्य करने, श्रेष्ठतम परिणाम निकालने, काम के प्रति समर्पित होने, इच्छा शक्ति को जाग्रत करने एव उत्तरदायित्व समझने में सहायक होता है। यह प्रेरणा से कुछ अलग है।

एक व्यक्ति किसी को उत्साही तो नहीं बना सकता परंतु उसे प्रेरित अवश्य कर सकता है। प्रेरणा से व्यक्ति की सोच में परिवर्तन होता है, जबकि उत्साहवर्द्धन से कार्य-प्रणाली तथा कार्यक्षमता मे बदलाव आ जाता है। कार्य क्षमता से कार्य कुशलता तथा कार्यशैली में सुधार तथा वृद्धि होती है, जिसके परिणामस्वरूप उत्पादकता में वृद्धि होती है। इसी उत्पादकता से अतत: सफलता प्राप्त होती है। सामान्यत: यह माना जाता है कि किसी व्यक्ति का किसी काम के प्रति उत्साह अथवा समर्पण मुद्रा प्राप्ति की संभावना पर ही निर्भर करता है। परन्तु यह वास्तविक नही है। मुद्रा प्राप्ति की संभावना के अलावा किसी काम के प्रति उत्साहवर्द्धन व्यक्ति के पारिवारिक, सामाजिक, धार्मिक, नैतिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक, शैक्षिणक एवं ऐतिहासिक परिवेश से जुड़ा होता है। अत: मुद्रा प्राप्ति उत्साहवर्द्धन का सामान्यतया सबसे प्रभावशाली तथा शक्तिशाली तत्व है, परंतु इसके अलावा भी निम्न तत्व उत्साहवर्द्धन (Incentives or Encouragement) के लिए महत्वपूर्ण है –

1. **सामाजिक प्रतिष्ठा :** मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है तथा सामान्यतया हर व्यक्ति समाज मे सम्मान चाहता है। अत: एक सफल व्यक्ति को समाज द्वारा सम्मानित करने अथवा पारितोपिक देने पर उस व्यक्ति मे उत्साहवर्द्धन होता है, जिससे उसमें कार्यक्षमता तथा कार्यकुशलता दोनो की

वृद्धि होती है।

2. कार्य की स्वीकृति : जो व्यक्ति जितना अधिक श्रेष्ठतर व शीघ्र कार्य संपादित करता है, उसे यदि नेतृत्व की ओर से सार्वजनिक रूप से स्वीकार किया जाता है, तो उस व्यक्ति का उत्साहवर्द्धन होता है।

3. पदोन्नति : अच्छा कार्य करने से पदोन्नति की सभावनाएं बढ़ती हैं। हर व्यक्ति आगे बढ़ना चाहता है तथा व्यापक प्रतिस्पर्धा के दौर में श्रेष्ठ कार्य करने वाला ही पदोन्नति प्राप्त कर पाता है। अत: पदोन्नति का मार्ग व्यक्ति को उत्साही बनने में काफी सहायक होता है।

4. कार्य की सुविधाएं : प्रत्येक व्यक्ति तुलनात्मक रूप से अच्छे प्राकृतिक, सामाजिक, संस्थागत वातावरण में काम करना चाहता है। कार्यो को इससे जोड़कर व्यक्तियो को उत्साही बनाने में इससे मदद ली जा सकती है। जैसे- संस्थान में गुटबंदी, पक्षपात इत्यादि को न पनपने देने से संस्था का प्रत्येक व्यक्ति अपने कार्य में पूर्ण उत्साह एवं निष्ठा से कार्य संपादित करेगा।

5. कार्य संतुष्टि : कार्य स्थल का वातावरण सहज, अनावश्यक नियंत्रणों से मुक्त, मूलभूत आवश्यकताओ (जैसे- शुद्ध पानी, जलपान, कूलर, पंखा, प्रकाश, फर्नीचर इत्यादि) से युक्त व सहयोगपूर्ण हो तो व्यक्ति को कार्य को करने से संतुष्टि मिलती है, जो अधिक तथा बेहतर काम करने हेतु उत्साही बनाती है। स्वप्रेरणा से काम करने से व्यक्ति की मानसिकता बिल्कुल बदल जाती है।

6. भय : किसी भी प्रकार के भय से कार्य को यथाशीघ्र सम्पन्न तो करवाया जा सकता है लेकिन इसका असर अल्पकालिक मालिक की उपस्थिति तक तथा कार्य के पूरा होने की सीमा तक ही रहता है। डर का व्यक्ति की सृजनशीलता, उत्पादकता, मानसिकता व संस्थान के प्रति लगाव की भावना पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। भय के उदाहरण हैं : जैसे- वेतन में कटौती, छंटनी, पद-अवनति, छुट्टियां अथवा अवकाश की स्वीकृति न देना इत्यादि।

7. उद्देश्य के प्रति विश्वास : जिस उद्देश्य, जैसे- राष्ट्रप्रेम, सामाजिक उत्थान अथवा सेवा, आर्थिक व सामाजिक गौरव या प्रतिष्ठा से प्रभावित होकर कोई कार्य किया या करवाया जा सकता है, तो व्यक्ति का उत्साह स्वाभाविक रूप से स्वप्रेरणा से बढ़ता है।

8. अधिकारों एवं दायित्वों के प्रति सजगता : अधिकारों के प्रति सजग तथा उत्तदायी व्यक्ति स्वत: अधिक उत्साही व जागरूक हो जाता है। कारण, इस स्थिति से उसे जो अतिरिक्त सम्मान तथा संतुष्टि प्राप्त होती है, उसे वह यथासंभव गंवाना नहीं चाहता। इसी मनोवृत्ति के कारण अधिकारी सामान्य कर्मचारी से अधिक समय व अधिक तत्परता एवं समर्पण से कार्य करते हैं तथा शीर्ष अधिकारियो से संपर्क बनाए रखते है।

9. सुखद भविष्य की आशा : किसी काम की परिपूर्णता से व्यक्ति के भविष्य के सुखद होने की संभावना रहती है, जैसे- वांछित आय या नेतृत्व की प्राप्ति, अवार्ड या पुरस्कार से सम्मान, काम के प्रति व्यक्ति का उत्साह बढ़ाता है।

10. पूर्ण संतुष्टि की अनुपस्थिति : किसी भी कार्य से संपूर्ण संतुष्टि कभी भी प्राप्त नहीं की जा सकती है। कारण, यदि ऐसी स्थिति मान ली जाये, तो और अधिक विकास या विस्तार की संभावनाएं क्षीण हो जाती हैं। किसी सकारात्मक संभावना की कल्पना के बिना व्यक्ति का काम के प्रति उत्साही बने रहना संभव नहीं है।

11. संबद्धता की भावना : *यदि किसी संस्था में चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी* से लेकर अफसर तक को केवल 'साथी' शब्द से संबोधित किया जाता है, तो इस प्रकार का वातावरण संस्था के प्रति कर्मचारियो की संबद्धता (लगाव) मे वृद्धि करता है। परिणामस्वरूप कार्य के प्रति लगाव व उत्साह स्वत: दृढ़ एव विकसित होते हैं। ❑

बचत : आवश्यकता तथा महत्व

आपने सुना होगा कि 'पैसे से पैसा बनता है।' अर्थात् बैंक, पोस्ट ऑफिस तथा अन्य वित्तीय संस्थाओं में पैसा जमा करवाने से एक अच्छी खासी रकम ब्याज समेत प्राप्त हो सकती है। इसके अतिरिक्त गृहस्थ जीवन मे कई प्रकार की भविष्य में होने वाली आवश्यकताओं के लिए भी पैसे की बचत अनिवार्य है, जैसे- बच्चों का लालन-पालन, शिक्षा, चिकित्सा, शादी, मनोरंजन, टी.वी., फ्रीज, कूलर खरीदने हेतु, परिवार की साधारण ज़रूरतें जैसे- प्रेशर कुकर, रसोई गैस, पैट्रोल (वाहनों के लिए) वाहनों जैसे- स्कूटर, साईकिल, कार, मोटर-साईकल खरीदने हेतु बचत करना आवश्यक है, जिसके लिए परिवार का मासिक अथवा त्रैमासिक-बजट बना लेना चाहिए। इसके अतिरिक्त भी हर चीज के लिए पैसा खर्च करना पड़ता है, जैसे- शादी पर नये वस्त्र बनाने के लिए, सर्दियो में गर्म कपड़ों-बिस्तरों आदि पर खर्च, दान-दक्षिणा पर खर्च, बहन बेटियों के आने पर खर्च आदि। बजट बनाते समय समस्त खर्चों को गिनें तथा वास्तविकता के करीब अनुमानानुसार बजट बनायें। स्थायी खर्चे जैसे-खाने-पीने का खर्च, बिजली, फोन, दूध, माली, परिवहन (Taxi), पेपर, ड्राईवर, बाई (House maid), पानी, मोबाइल आदि सब प्रकार के खर्चों को शामिल करने के पश्चात् ही बचत का अनुमान लगाना चाहिए। इसके अतिरिक्त आकस्मिक खर्चे जैसे- जन्मदिन, शादी, वैलेन्टाइन डे आदि पर गिफ्ट अथवा उपहार पर खर्च, अतिथि-सत्कार पर खर्च, माता-पिता की चिकित्सा एवं तीर्थ-यात्रा आदि पर खर्च भी हो सकते हैं। वर्तमान में फाइनैस (ऋण) सुविधा उपलब्ध है परंतु वह भी बचत का परोक्ष रूप ही है, कारण हर माह किस्त तो देनी ही पड़ती है। आय से अधिक खर्च करना बुद्धिमानी नही है। अत: 'तेते पैर पसारिये, जेति लांबो सोड़।' अर्थात् खर्च आय तक सीमित रहे तो उत्तम है।

आइये, देखे घर मे बचत हम किन-किन उपयों से कर सकते हैं।

(अ) शापिंग में बचत

(1) *शापिंग में जाने से पहले अपना बजट निर्धारित कर लें।*

(2) शापिंग में जाने से पहले सामान जो खरीदना है, उसकी लिस्ट बना लें तथा अनुमानित लागत लिख लें।

(3) पड़ोसी अथवा परिचित के साथ यदि शापिंग पर जायें तो टैक्सी का किराया शेयर करें।

(4) ज्यादा मात्रा में कोई सामान यदि खरीदना हो तो आपस में मिलकर खरीदें तथा शेयर करे।

(5) *सामान खरीदते समय माप-तौल का ध्यान रखें।*

(6) सामान खरीदने से पहले सामान की क्वालिटी की जांच कर लें तथा कीमत (भाव) अवश्य पूछें तथा भुगतान सही हिसाब लगाकर करें।

(7) मंहगे बाज़ार से सामान खरीदना आवश्यक नही है, वही चीज यदि आपको दूसरी जगह सस्ती मिल रही हो तो वहां से खरीदे। वस्तु की क्वालिटी एवं फैशन (लुक) का भी ध्यान रखें। ऐसा न हो कि सस्ते मे घटिया सामान घर ले आयें, विशेषकर कपड़ो, साड़ियो में। खाने-पीने की चीजें साफ-सुथरी तथा ताज़ा खरीदें जैसे- तरकारी, फल, दालें, चावल, मसाले, घी, तेल, आटा इत्यादि। भाव की एक-दो दुकानों से जांच-पड़ताल कर लें।

(8) यदि कोई सामान कांच का है तो उसकी पैकिंग का विशेष ध्यान रखें, ऐसा न हो कि घर पहुंचने से पहले ही टूट जाये तथा नुकसान हो जाये।

(9) अपने खरीदे हुए सामान, पर्स तथा छोटे बच्चे(यदि साथ हों) का ध्यान रखें, ऐसा न हो कि चोरी अथवा गुम होने पर मानसिक एव शारीरिक कष्ट झेलना पड़े।

(10) छोटे बच्चों को जहां तक हो सके शापिग में साथ न लेकर जायें। कारण बच्चो मे उलझ कर आप से कोई गलती अथवा भूल हो सकती है। इसके अतिरिक्त बच्चों के साथ टैक्सी इत्यादि मे काफी परेशानी हो सकती है। खर्च बढ़ता है, सो अलग। अत: छोटे बच्चों को यथासभव घर पर ही परिवार के किसी सदस्य की देखभाल मे छोड़े तो अच्छा रहेगा तथा शापिंग मे भी सुविधा रहेगी। बच्चे भी परेशान नहीं होंगे। खर्च में भी बचत होगी।

बच्चों के लिए बाजार से कुछ भी खाद्य-पदार्थ, पेय वस्तु ला सकते हैं।

(ब) बिजली की बचत

(1) कमरे में यदि व्यक्ति नहीं है तो सभी बिजली के पांइट बंद कर दें।

(2) कोई सुनने/देखने वाला हो तब टी.वी., रेडियो, टेपरिकार्डर आदि चलायें अन्यथा बंद रखें।

(3) कोई कार्यक्रम यदि देखना है, तभी टी.वी चलायें।

(4) सिनेमा-हॉल में फिल्म देखने की जगह सी.डी. अथवा वी.सी.डी. लाकर फिल्म का आनन्द उठायें। यह सस्ता एवं सुविधाजनक रहेगा।

(5) फ्रीज को बार-बार तथा देर तक खुला न रखे।

(6) हमेशा प्रैस (Iron) का स्विच ऑफ करके ही कोई दूसरा कार्य करें। इससे सुरक्षा भी रहेगी तथा बिजली की बचत भी होगी।

(7) एयर कंडीशनर के तापमान को सैट करके रखें (रात को ऑटो ऑफ मोड पर रखें)।

(8) नियमित रूप से बिजली के उपकरणों जैसे- पंखे, कूलर इत्यादि की सर्विस करायें। इससे उपकारण की मियाद (Life span) बढ़ेगी, साथ में बिजली की बचत होगी।

(9) बिजली के सभी पांइट, प्लग-पाइंट सही हालत में रखें। इससे दुर्घटना से बचाव होगा तथा बिजली की छीजत (Leakage) नहीं होगी।

(10) घर में मेन स्विच के साथ एम.सी.बी. लगवाये, इससे वोल्टेज ज्यादा आने पर उपकरण खराब नहीं होगे।

(स) पानी की बचत

(1) घर मे नल में से पानी टपकता हो तो उसे तुरंत ठीक करवाये।

(2) पानी का काम नहीं हो तो नल को बंद रखे।

(3) कपड़े धोने के बाद डिटर्जेंट मिले पानी से पोछा लगा सकते हैं।

(4) हाथ धोते समय, ब्रश करते समय अथवा फ्रेश होते समय नल को आवश्यकतानुसार खोलें तथा प्रयोग करे।

(5) फ्लश के प्रयोग मे पानी का सावधानीपूर्वक प्रयोग करें। व्यर्थ पानी

न बहायें। सदा ध्यान में रखें, सफाई के लिए जितना पानी आवश्यक है उतना ही उपयोग में लें। ब्रश का सफाई के लिए उपयोग करने से पानी कम खर्च होगा।

(6) ध्यान रखें कि 'जल ही जीवन है' तथा 'जल सीमित है' अतः जल की बचत एवं संरक्षण आज की आवश्यकता है। इसमें स्वयं की आवश्यकता है। इसमें स्वयं तथा देशहित में मदद करें।

(द) समय की बचत

(1) काम को व्यस्थित रखे/काम फैलाएं नहीं अपितु निपटायें।

(2) एक साथ कई काम हाथ में न लें।

(3) ऐसे काम एक साथ करें, जो आसानी से और एक जगह पर सुगमता से बिना किसी कठिनाई तथा अतिरिक्त परिश्रम से हो सकते है जैसे- दूध गर्म करने के साथ सब्जी काटना अथवा धोना, बर्तन साफ करना आदि।

(4) कपड़े भिगोकर कोई और कार्य भी कर सकते है।

(5) एक दिन पूर्व यदि समय बचे तो अगले दिन के कार्य एडवान्स में कर सकती हैं, जैसे- कपड़े प्रैस करना, गेहूं साफ करना, मसाले साफ करना तथा पीसना आदि।

(6) पुरुष भी पूर्व योजना (कार्यो की) बनाकर समय की बचत कर सकते है।

समय अनमोल है, इसकी बचत जीवन का अनिवार्य अंग बन गई है। इसके अतिरिक्त बचत से परिवार को 'आर्थिक-सुरक्षा तथा संबल' भी मिलता है, जिससे ज़िंदगी की गाड़ी बिना किसी परेशानी के आराम से चलती है। अकस्मात कोई बड़ा खर्च जैसे- दुर्घटना होने पर, भयंकर बीमारी होने पर इलाज के लिए चिंतित नही होना पड़ता।

बचत *'बुढ़ापे का सहारा' भी बनती है। जमाना बदल रहा है।* बच्चों पर निर्भरता जितनी कम हो, उतना ही अच्छा होगा। तथा इससे सुविधा होगी। बचत यदि की गई होगी, तो हम आत्मनिर्भर होगे तथा बच्चों के लिए ही कुछ न कुछ कर सकने मे समर्थ होंगे। अतः मां-बाप को स्वयं तथा बच्चों में बचत की आदत बचपन से ही डालनी चाहिए।

अंत में, बच्चों में बचपन से ही बचत की आदत डालने से कभी-कभी

द्वितीय खण्ड

बच्चों को सुसंस्कृत कैसे बनायें?

यह बात सर्वविदित है कि दुनिया में आने के बाद हर प्राणी, प्रत्येक जीवन-जन्तु अपनी पूरी ज़िंदगी जीता है और अपनी आयु पूरी भोगकर मर जाता है। परंतु जीव-जन्तु तथा मनुष्य के जीवन में एक सतही अंतर है। ईश्वर ने जो सबसे बड़ा अंतर मनुष्य तथा जीव-जन्तुओं में रखा है, वह बौद्धिक विचारधारा तथा वैचारिक भिन्नता। जीव-जन्तुओ, जैसे-गाय, घोड़ा, कुत्ता, बन्दर आदि में भी मस्तिष्क होता है परंतु मनुष्य का मस्तिष्क काफी विकसित एवं परिपक्व माना गया है। जो शक्तियां भगवान ने केवल मनुष्य को दी हैं, इन शक्तियो की बदौलत इसके जीवन के लक्ष्य भी उसे पशु समाज से अलग करते है। जीवन जीने तथा सार्थक जीवन जीने में बड़ा फर्क है। कहने का तात्पर्य है कि जो गुण विधाता ने केवल मनुष्य मात्र को प्रदान किये हैं, उन गुणो के प्रति अपना सम्मान प्रकट करने के लिए मनुष्य को अपने मानवोचित दायित्व भी निभाने की ज़िम्मेदारी न केवल समान या परिवार की है बल्कि प्रत्येक व्यक्ति व्यक्तिगत तौर पर अपनी सामाजिक ज़िम्मेदारी निभाने के लिए प्रतिबद्ध है।

परिवार के वातावरण का बच्चों के जीवन एवं संस्कार निर्माण मे काफी महत्वपूर्ण योगदान होता है। यहा कुछ ऐसे सूत्र प्रस्तुत हैं, जिनके पालन से बच्चों को सुसस्कृत तथा चरित्रवान बनाने में मदद मिलती है –

(अ) जिन बच्चों की सदैव आलोचना की जाती है, वे परनिंदा करना सीखते है व जिन बच्चों के कार्यो की प्रशंसा की जाती है, वे गुणग्राही बनते है।

(ब) जिन परिवारो में सदस्य बात-बात पर आपस में लड़ते-झगड़ते है, उनके बच्चे झगड़ालू होते हैं।

(स) जिन बच्चों का मज़ाक (उपहास) उड़ाया जाता है, उनमें

एकाकीपन तथा आत्मविश्वास की कमी पाई जाती है। ये बच्चे शंकालु प्रवृत्ति के बन जाते हैं तथा कोई बात कहने से कतराते अथवा शर्म महसूस करते हैं। अतः इन बच्चों में आत्मबल की कमी झलकती है।

(द) जो बच्चे पक्षपात रहित वातावरण में पलते हैं, वे स्वावलम्बी होते हैं।

(ड) जिन परिवारों में मैत्रीपूर्ण वातावरण पाया जाता है, उन परिवारों के बच्चे दूसरों से स्नेह करते हैं, बड़ों का आदर-सम्मान करते हैं एवं अनुशासन का पालन करते हैं।

(क) जिन बच्चों के अभिभावक(माता-पिता, दादा, बड़ी बहन, भाई आदि) उन पर विश्वास करते हैं, वे बच्चे झूठ, चोरी, छल, चुगली, परनिंदा इत्यादि से दूर रहते हैं।

(ख) जिस परिवार के सदस्य एक-दूसरे से सहयोग करते हैं, उस परिवार के बच्चों में दूसरे के प्रति सम्मान की भावना पाई जाती है।

(ग) जिस परिवार के सदस्य एक-दूसरे के प्रति सहनशील होते हैं, उन परिवारो के बच्चे भी सहिष्णु एवं धैर्यवान होते हैं।

हम सभी भली-भांति जानते हैं कि बच्चा एक दिन में नहीं सीखता। जन्मोपरांत घर, परिवार और समाज में होने वाली हर छोटी से छोटी घटना का उसके नाजुक मन-मस्तिष्क पर गहरा प्रभाव पड़ता है। अतः हमारा यह दायित्व बनता है कि जन्म से ही हम बच्चे को ऐसा वातावरण दें जिससे उसके सपूर्ण व्यक्तित्व का विकास हो सके; और बच्चे सुसंस्कारित होने चाहिए क्योंकि हमारा भविष्य, हमारा समाज, हमारा राष्ट्र और हमारी भावी पीढ़ियां अपने वास्तविक जीवन-मूल्यों का निर्माण करके समाज में अपनी बौद्धिक एवं वैचारिक श्रेष्ठता को सिद्ध कर सकेंगी।

पर-स्त्री/पुरुष गमन इत्यादि के शिकार होने से बचे रहें।

अंत में, यदि हमारे बच्चों मे अच्छे संस्कार होंगे तो हमारा घर, परिवार, समाज एवं राष्ट्र सबका नाम रोशन होगा तथा विश्व में 'हमारा देश भारत एक श्रेष्ठ तथा विकसित राष्ट्र' के रूप में जाना जायेगा। अतः हम अपने बच्चों को सुसंस्कृत करने का दायित्व संभाले, उन्हें अच्छा तथा स्वच्छ साहित्य पढ़ने को दें, समय-समय पर लाभप्रद एवं गुणकारी शिक्षा-दीक्षा दें तथा आवश्यकतानुसार सही तथा प्रभावी परामर्श देकर मार्गदर्शन करें ताकि वे पथ-भ्रमित न हो एवं अपना दूसरो के प्रति जैसे घर, परिवार, समाज एवं राष्ट्र के प्रति दायित्व समझें एवं एक सुयोग्य एवं सुसंस्कारित नागरिक बन सकें। ❑

ज्ञानार्जन की कोई उम्र तथा सीमा नहीं होती

कहावत है-

'विद्या के भंडार की बड़ी अनोखी बात।
ज्यों खर्चे त्यों-त्यों बढ़े, बिन खर्चे घट जात।।'

अर्थात् विद्या अथवा ज्ञान ग्रहण करने तथा प्रदान करने में विद्या की पूंजी बढ़ती है। यह वह पूंजी है जिस पर न कोई अपना अधिकार जमा सकता है, न ही कोई इसे चुरा सकता है। ज्ञानार्जन की कोई उम्र एवं सीमा नहीं है। संसार मे ज्ञान का भंडार अथाह अथवा असीमित है।

प्रसिद्ध कार निर्माता हेनरी फोर्ड ने कहा है कि जो सीखना बंद कर देता है, वह बूढ़ा है, चाहे बीस साल का हो या सत्तर साल का। जो सीखता रहता है, वह युवा है। जीवन में सबसे महत्वपूर्ण है कि अपने मस्तिष्क को युवा रखा जाये। इस बात की पुष्टि दो युवा डॉक्टरों के एक सफल, दूसरा असफल के, विचारों को जानकर हुई। सफल डॉक्टर अपनी व्यस्तता के बावजूद अपने ज्ञान को बढ़ा रहा था। अच्छी मेडीकल पत्र-पत्रिकाएं मंगाता तथा पढ़ता था। सेमीनारों, गोष्ठियों, कार्यशालाओं, सम्मेलनो, अधिवेशनो आदि में जाता था। एक-दो घंटे प्रतिदिन अपने व्यवसाय संबंधी एवं अन्य जानकारी पुस्तकें पढ़कर प्राप्त कर लेता था। दूसरा असफल डॉक्टर, जिसके पास रोगी कम आते थे, कहता था- 'सब किस्मत का खेल है। मरीज नहीं आते तो मैं क्या करूं! बुलाने तो जाऊंगा नहीं। रोजी चल रही है, बहुत है।' उसके पास ज्ञान बढ़ाने का समय नहीं था। स्पष्ट उत्तर था- 'अरे अब पढ़ने-लिखने की उम्र है क्या? घर, परिवार व दवाखाना सारा समय ले लेता है।'

आधुनिक युग विशेषज्ञों का युग है, ज्यों-ज्यों ज्ञान का विस्तार होता जाता है, उसकी शाखाए, उपशाखाएं खुलती रहती हैं। पहले सारे शरीर के इलाज के लिए एक ही डॉक्टर हुआ करता था। अब आंख, कान, नाक, दिल, हड्डी,

त्वचा, गुर्दा आदि के लिए अलग-अलग विशेषज्ञ, डॉक्टर होते है। बच्चों, स्त्रियों एवं प्रजनन (प्रसूति)के अलग-अलग विशेषज्ञ डॉक्टर हैं। सूचना-प्रौद्योगिकी (Information technology) कम्प्यूटर, टी.वी., रेडियो आदि ने ज्ञानार्जन की आवश्यकता एवं महत्व को और व्यापक तथा अनिवार्य बना दिया है। बिना ज्ञान के व्यक्ति दूसरे व्यक्तियों से पिछड़ सकता है। कोई भी क्षेत्र ऐसा नहीं है, जहां ज्ञान का विस्तार न हुआ हो अथवा न हो रहा हो। व्यापार, बैंकिंग, उद्योग, कृषि आदि सभी क्षेत्रों में विविधता आ रही है। अतः सार्थक जीवन जीने के लिए हर समय कुछ नया सीखते रहना परमावश्यक हो गया है।

हर व्यक्ति अपने आपके लिए कोई अच्छा वकील, अच्छा डॉक्टर, अच्छा शिक्षक, अच्छा मिस्त्री, अच्छा मित्र तलाशता है। अच्छा व कुशल व्यक्ति वही होगा, जो अपना काम लगन से शुरू करेगा तथा नवीनतम ज्ञान से खुद को अवगत रखेगा। कला का क्षेत्र हो या व्यवसाय का, सफल वही होगा, जो नये डिजाइन की वस्तुएं पेश करेगा पर यह सब होगा कैसे? उसे नई-नई वस्तुए बनाना सीखना होगा। इसलिए दूसरों से, देश-विदेश से संपर्क रखकर ताजा अथवा नवीनतम ज्ञान प्राप्त करना होगा। फिर उस जानकारी का अपने हुनर (दक्षता) मे समावेश कर नई-नई वस्तुएं तैयार करनी होंगी। एक बड़े प्रतिष्ठावान के मालिक का कहना है कि वह उसी के साथ व्यापार करता है, जो अपने व्यापार के बारे मे अच्छा ज्ञान रखता हो और उसका तथा अपना समय बर्बाद किए बगैर बता सके कि उसके पास क्या है? जो दूसरों के काम का हो। वह उस विक्रेता से माल खरीदना पसद करता है, जो अपने माल के प्रति ईमानदार हो। अपने माल की अच्छाइयो व कमियो को भली-भांति जानता हो। ऐसे व्यक्ति से गलतफहमी उत्पन्न नही होती और विवाद का प्रश्न ही नहीं उठता।

विशेषज्ञ बनने का उपाय है कि अपने विषय के बारे मे अधिक से अधिक ज्ञान संग्रहित करे। एक अच्छे पुस्तकालय का सदस्य बनकर आप अपने विषय की नवीनतम पुस्तके पढ़ सकते है। कुछ अच्छी पुस्तके खरीदी भी जा सकती है। पढ़ते समय उपयोगी बाते नोट करने की आदत डाले। बाद मे ज़रूरत पड़ने पर हो सकता है, वह पुस्तक न मिल सके। अपनी पुस्तक हो तो प्रमुख अश रेखांकित किए जा सकते है। महत्वपूर्ण सामग्री को पुस्तक की फोटोस्टेट कापी करवा कर प्राप्त किया जा सकता है। अपने व्यवसाय से

संबंधित सम्मेलन, गोष्ठी, परिचर्चा, सेमीनार, कार्यशाला, बैठक, सभा, अधिवेशन इत्यादि में शामिल होना उपयोगी होता है। वहां अनेक शोध-पत्र पढ़े जाते हैं, जिनमे कुछ नया व ताजा मालूम पड़ता है। विषय के मूर्धन्य व्यक्तियों से संपर्क बढ़ता है, जो उपयोगी तथा महत्वपूर्ण है।

अतः हर समय कुछ नया सीखने की जिज्ञासा रखें तथा युवा बने रहें। यही प्रगति तथा उन्नति का मार्ग है। ❑

एक नाजुक तथा अटूट रिश्ता सास बहू का

जब कोई नई बहू पहली बार अपने ससुराल में आती है तो उसका सामना सबसे पहले उसके पति के जीवन में पहले से मौजूद 'एक महिला' से होता है, जो उसकी 'मां' होती है। इस 'मां' ने आपके पतिदेव के नाज़-नखरे बरसों से उठाये होते हैं तथा जननी तथा पालन-पोषण करने वाली भी वही है। अतः नई बहू को उसे प्यार तथा सम्मान देना चाहिए।

जब नई बहू ससुराल में आती है तो ससुराल वालो की नई बहू से काफी आशाए (अपेक्षाएं) होती हैं तथा इसी प्रकार नई बहू को भी ससुराल के सदस्यो से अपेक्षाएं रहती हैं। परंतु यह ज़रूरी नही कि दोनों पक्षों की सभी इच्छाएं पूर्ण हो।

सास-बहू का रिश्ता कुछ खट्टा तो कुछ मीठा कहा जा सकता है। कहावत है- 'लकड़ी आली (गीली) भी जले, सास सीधी भी लड़े।' यानी कि लकड़ी गीली हो तब भी जल जाती है तथा सास कितनी भी सीधी या भोली क्यो न हो, वह भी बहू से लड़ सकती है अथवा डांट-फटकार करती ही है। अतः सास-बहू का रिश्ता मधुर बना रहे, इसके लिए इन बातों पर ध्यान रखना आवश्यकता है -

1. **पूर्वाग्रह से ग्रसित न हों :** सास तथा बहू दोनों के लिए ज़रूरी है कि वे एक दूसरे के प्रति पूर्वाग्रह से ग्रसित न हो। दोनों की पीढ़ियो मे अंतर है, अतः जीवन-शैली, नज़रिया व कार्यप्रणाली मे अंतर आना स्वाभाविक है। लेकिन ज़रूरी है दोनों इस बात को समझें और एक-दूसरे का आदर करें। विवाह से पूर्व यह सोचकर न बैठे कि सास तो 'कठोर स्वभाव' की होती है या आजकल की बहुएं 'मुंह फट' होती है। इन विचारों को दिल एवं दिमाग में स्थान न दें। ये विचार ही आगे चलकर सोच का पूर्ण नज़रिया बनकर रिश्ते की नींव को कमज़ोर कर सकते है।

2. कोई किसी से कम नहीं : कई बार दोनों का एक पुरुष के लिए असीम प्यार भी एक बड़ी बाधा बन जाता है। दोनो को यह समझना चाहिए कि दोनों का स्थान अलग-अलग है और महत्व भी। दोनों की एक-दूसरे से प्रतियोगिता कभी भी नही हो सकती। यदि घर में बहू आई है तो वह भी आपके बेटे का उतना ही ध्यान रखेगी जितना कि आप रखती है। साथ ही बहू को भी समझना चाहिए कि उनके लिए (सास के लिए) उनका पति अभी भी आंख का तारा है तथा रहेगा। सास का सोचना कि शायद बहू उसके बेटे का उतना ख्याल नहीं रख पायेगी, हो सकता है परतु यह सास (पति की मां) का बेटे के प्रति प्रेमवश होना है।

3. ये घर तेरा, ये घर मेरा : जब दोनो को एक ही घर में रहना है तो थोड़ा-सा समझौतावादी होना ही पड़ेगा। चूंकि बहू दूसरे घर से आती है, तो उसके स्वभाव तथा तौर-तरीकों में फर्क होना स्वाभाविक है। अत: सास को इस बात को समझना चाहिए तथा आज के दौर के अनुसार थोड़ा बहुत व्यवहार तथा स्वभाव में लचीलापन लाना चाहिए। दूसरी तरफ बहू को भी परम्पराओं, रीति-रिवाजों के अनुसार स्वयं को ढालने की कोशिश करनी चाहिए।

4. संवाद बनाये रखें : रिश्तों को टूटने से बचाने के लिए परस्पर संवाद बहुत ज़रूरी है, अत: इस मार्ग को कभी बंद न होने दे। यदि आपको बहू की कोई बात पंसद नहीं आती, तो प्यार से उसे समझाइए। इसी प्रकार बहू को भी समझना चाहिए कि मुंह फुलाकर बैठने से अच्छा है बातचीत के द्वारा ही परेशानियो/समस्याओं का हल ढूंढ़ लिया जाये। स्मरण रहे कि ज़ुबान पर कड़वाहट नहीं होगी, तो दिल में भी ज्यादा दिन तक नफरत नहीं टिक सकती।

5. अधिक आलोचनात्मक न बनें : दोनो ही पीढ़ियों में अन्तर के कारण विचारधाराओं में अन्तर आना स्वाभाविक है। अत: दोनों ओर से थोड़ी बहुत टकराहट भी अपेक्षित है, लेकिन एक-दूसरे की अत्यधिक आलोचना से बचकर रहें। यदि कभी ऐसी स्थिति आ भी जाये तो बहू को बड़ों से क्षमा मांगने में झिझक नहीं होनी चाहिए तथा सास को भी बहू को छोटा समझकर माफ कर देना चाहिए। अर्थात् दोनों पक्षों को ज्यादा बहस में न जाकर संयम तथा समझदारी से काम लेना चाहिए ताकि घर का वातावरण मधुर तथा सुखमय बना रहे।

6. अनमोल तथा अटूट रिश्ता : ध्यान में रखे कि सास कभी भी मा

नही होती और वहू कभी भी वेटी नहीं वन सकती। जिस दिन यह वात समझ मे आ जाये, उस दिन रिश्ते की डोर और मजबूत हो जायेगी। सभी रिश्तों की अपनी अहमियत (विशेषता) होती है और हर रिश्ता अपने आप में अनोखा होता है।

अन्य ध्यान देने योग्य वातें

(1) यदि वहू कामकाजी है, तो घर के कार्यों में उसकी थोड़ी सहायता करें।

(2) यदि सास कोई सलाह दे, तो उसकी आलोचना न करें वल्कि समझें।

(3) सास के कार्यों में दखलंदाज़ी न करे।

(4) सास को चाहिए कि नई वहू की भी कुछ अपेक्षाएं होंगी, अतः उसके अनुसार उसे घर की ज़िम्मेदारी संभालने दे।

(5) अपनी समस्याएं वातचीत से सुलझाएं। पीठ पीछे बुराई से वचें।

(6) घर की साज-सज्जा या रीति-रिवाजों में अचानक वदलाव लाने का प्रयास न करें, इससे आपकी सास को दुःख हो सकता है।

(7) नये घर के तौर-तरीको, रीति-रिवाजों, पर्वो तथा संवंधो को समझने के लिए सास से वढ़कर कोई अच्छा मार्गदर्शक अथवा शिक्षक नहीं हो सकता - इस वात का ध्यान रखें।

उपर्युक्त वातों का यदि ध्यान रखा जाये तो सास-वहू का रिश्ता एक पावन, मधुर तथा श्रेष्ठ रिश्ता वन सकता है तथा घर मे खुशियां ही खुशियां हो सकती है। ❑

नारी-दासता

अवला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी।
आंचल में है दूध और आंखों में पानी।।

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त की उक्त पंक्तियां नारी जीवन की दशा के सर्वकालीन सच को उजागर करती हैं। नारी की नियति है जन्म लेना, जन्म देना व मृत्यु को प्राप्त करना। जन्म से मृत्यु तक वह पुरुष के नियंत्रण में रहती है। वचपन में पिता, जवानी में पति तथा वृद्धावस्था में वेटे की सत्ता नारी को सहनी पड़ती है। जन्म से मृत्यु तक स्त्री को निरन्तर यह बोध कराया जाता है कि वह स्त्री है, पुरुष की दासी है, उसका काम है घर के समस्त पुरुषों की सेवा करना, उनके लिए भोजन वनाना, उनके कपड़े-जूते साफ रखना, घर की सफाई तथा सजावट रखना, पुरुषों को आनन्द व आराम इत्यादि देना। यदि घर का कोई पुरुष यथा भाई, चाचा, जीजा, मामा यहां तक की पिता उनके साथ अभद्र व अश्लील व्यवहार करता है, उनके साथ वलात्कार करता है तो उन्हें अपनी जुवान नहीं खोलनी चाहिए। घर के पुरुष को सज़ा हो गई तो उन्हें भर पेट रोटी कौन देगा? बचपन से ही लड़की को ऐसी शिक्षा कौन देता है? निश्चय ही मां, दादी अथवा घर की अन्य कोई बुजुर्ग महिला। छोटी-सी लड़की को सिखाया जाता है कि दूध-घी भैया के लिए है। उसे समझाया जाता है कि पहले पुरुष-वर्ग यथा पिता, भाई, चाचा, ताऊ इत्यादि को खाना खिलाकर वाद में बचे-खुचे खाने को स्त्रियां खाती हैं। यदि पति घर में नहीं होते तो घर में खाना ही नहीं बनाया जाता। स्त्रियां अक्सर अचार, चटनी इत्यादि से बचा हुआ वासी खाना खाकर पेट भर लेती है।

भारत में, विशेषकर हिन्दू समाज मे स्त्रियां पति के लंवे सुखमय जीवन के लिए तथा दीर्घायु के लिए करवा-चौथ का व्रत रखती हैं। दिन भर भूखी-प्यासी रहकर देर रात को जब चंद्रमा आकाश में देख लेती हैं, तव भोजन

करती है। लड़कियों को अच्छा वर मिले इसके लिए सावन के सोलह सोमवार का व्रत रखती हैं। यह शिक्षा, सस्कार घर के पुरुष नहीं बल्कि स्त्रियां लड़कियों को देती हैं। यदि कोई लड़की पढ़ने में होशियार है, डॉक्टर या इजीनियर बनना चाहती है तो उसकी महत्वाकाक्षा पर मां अथवा घर की कोई प्रभावशाली स्त्री यह कहकर चोट करती है, "पढ़ाकर हम तुम्हें घर में थोड़े बिठायेगे? ना बाबा, हमे तो तुम्हारे हाथ पीले करने हैं।" मां पिता को कहती है- "लड़की कॉलेज जाती है, कही ऊंच-नीच न कर बैठे। विवाह-योग्य कन्या के लिए लड़के (वर)की तलाश करो।" पति यदि शराबी, जुआरी, वैश्यागामी अथवा दुराचारी भी है, लेकिन पत्नी के लिए परमेश्वर है - उसके शरीर तथा भावनाओं का एकमात्र स्वामी। ऐसी मानसिकता स्त्रियां बचपन से ही ग्रहण कर लेती है। पति नशे मे मारता-पीटता है, गाली देता है, सब सहना नारी की नियति बन जाता है। शराब तथा जुए के लिए पैसा कमाकर लाना तथा पति को देना स्त्रियों ने अपना कर्त्तव्य समझ लिया है। यह नारी-दासता नहीं तो और क्या है? गार्गी, अरुधती, अनसुइया, सावित्री, शबरी, लोपा-मुद्रा आदि महान नारियां जिस भारतीय समाज में हुई, उसमें आगे चलकर वे पत्नी व अर्द्धांगिनी नही वरन् तन-मन व वचन से पुरुष की दासी बन गई थीं।

सबसे दु:खदायी स्थिति यह है कि महिलाओं को स्वयं पता ही नहीं चलता कि वे वस्तुत: पराधीन व दलित है। चीन मे एक परम्परा थी, बहुत छोटी उम्र में बच्चियो को लकड़ी के तंग जूते पहनाकर रखा जाता था ताकि उनके पांव छोटे रहे, भारत मे पर्दा-प्रथा आज भी प्रचलित है। उच्च शिक्षा प्राप्त ऊंचे पदो पर आसीन अनेक मुस्लिम महिलाएं आज भी बुरका पहनती हैं। महिलाएं स्वय शोषण को बढ़ावा देती है, अपने ऊपर हो रहे अत्याचारों को मूर्ति बन स्वीकार कर लेती है, अपनी बहू-बेटियों को यह उपदेश देती है कि "स्त्री का सुख ही उसका सुहाग यानी पति है। पति की सेवा करना, उसकी आज्ञा पालन करना स्त्री का परम धर्म है।" अनेक स्त्रियां तो अपने पति अथवा बच्चो का छोड़ा हुआ जूठा भोजन खाकर परम तृप्ति प्राप्त करती है। बुखार, सर्दी-जुकाम से ग्रस्त होने पर भी प्रात: नहा-धोकर पूजा-पाठ करती है। कई-कई दिनो तक उनकी बीमारी पर ध्यान ही नहीं दिया जाता। बीमार होने पर भी वे घर के कार्यो मे जुटी रहती है। ऐसे बलिदान या त्याग का क्या औचित्य है? कभी-कभी इलाज में देरी को वजह से ही स्त्रिया परलोक सिधार

जाती हैं। यह मानसिक दासता नहीं है तो क्या है? बचत का अपना तरीका है, किसी के जीवन को दाव पर लगाकर बचत करना अथवा खर्च न करना सर्वथा गलत तथा नासमझी ही है। स्त्रियों द्वारा पुरुष वर्ग (खासकर पति को) बीमारी की जानकारी न देना बहुत बडी भूल है।

वर्तमान में शिक्षा के प्रचार-प्रसार से नारी-शिक्षा में इजाफा हुआ है तथा सामाजिक सोच में भी परिवर्तन दृष्टिगोचर हुआ है, परंतु अभी भी सुधार हेतु प्रयास की काफी आवश्यकता है। अभी भी बाल-विवाह होते है, जो समाज पर एक कलंक है। परिवारों में भाई-बहन के रिश्ते में अन्तर, शिक्षा, खान-पान, रहन-सहन की दृष्टि से कम हुआ है परंतु समानता अभी भी नही हो पाई है। स्त्रियों की मानसिकता में धीरे-धीरे परिवर्तन आ रहा है, जैसे- जूठा न खाना, बासी या बचा-खुचा भोजन न खाना, आय के अनुसार अच्छा जीवन व्यतीत करना, अत्यधिक अत्याचार न सहना, लड़के-लड़की में ज्यादा असमानता न रखना इत्यादि।

यदि दुर्भाग्य से कोई स्त्री विधवा हो जाती है तो उसका जीवन तो नरक समान ही बन जाता है। उस पर अनेक सामाजिक बंधन लगा दिये जाते है। अतः समाज में नारी के पुनर्विवाह अथवा विधवा-विवाह का प्रावधान ज़रूरी है, जिससे विधवाओं का शेष जीवन सुखमय बीत सके। इस हेतु जन-जागरण की आवश्यकता है। □

दाम्पत्य जीवन का परिवार एवं समाज के प्रति कर्त्तव्य

जैसा हम सभी जानते है कि प्राचीन काल से मानव की औसत आयु सौ वर्ष आंकी गई है, जिसे चार आश्रमों मे बांटा गया है –

1. बाल्यकाल (बचपन+किशोरावस्था)	25 वर्ष तक
2. युवावस्था	25 से 50 वर्ष तक
3. प्रौढ़ावस्था	50 से 75 वर्ष तक
4. वृद्धावस्था	75 वर्ष से अधिक

विवाह के उपरांत प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में काफी परिवर्तन दृष्टिगोचर होते हैं। प्राय: विवाह की आयु 25 से 30 वर्ष के बीच मानी गई है, जिसमें व्यक्ति अपनी पढ़ाई (शिक्षा) पूरी कर धनार्जन के योग्य बन जाता है, यह व्यक्ति की युवावस्था का समय होता है। आइए देखे, दम्पति यानी पति एवं पत्नी के परिवार एव समाज के प्रति क्या-क्या कर्तव्य हो सकते है।

(अ) परिवार के प्रति कर्त्तव्य

1. संतानोत्पति अथवा वंशवृद्धि करना।

2. बच्चो का समुचित लालन-पालन करना।

3. बच्चो के स्वास्थ्य, शिक्षा एवं मनोरंजन के सभी संभव साधन जुटाना।

4. बच्चों का उत्साहवर्द्धन करना तथा समय-समय पर उन्हें उचित परामर्श देना।

5. परिवार के खर्चो को वहन करने हेतु धनार्जन करना, जैसे- नौकरी, व्यवसाय, खेती-बाड़ी इत्यादि करना, कल-कार[illegible] संचालन करना इत्यादि।

6. परिवार के वृद्धजनों जैसे- माता-पिता, सास-ससुर, बड़े भ्राता-बहन, जेठ-जेठानी, ननद-नन्दोई, भाभी इत्यादि का समुचित आदर करना, उनकी यथासंभव सेवा करना, उनके अनुभवो से लाभ उठाना, घर के मामलों मे उनका परामर्श तथा स्वीकृति लेना आदि।

7. घरेलू कार्यों जैसे- बच्चों के विवाह, उच्च-शिक्षा, चिकित्सा, भ्रमण इत्यादि भविष्य के खर्चों हेतु आय मे से कुछ राशि बचत के रूप में बचाना।

(ब) समाज के प्रति कर्त्तव्य

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। वह समाज मे रहता है। अत: उसके समाज के प्रति भी कुछ कर्त्तव्य है, जो मोटे तौर पर इस प्रकार हो सकते है-

1. सामाजिक गतिविधियों, जैसे- विवाह, शादी की सालगिरह, जन्मोत्सव, कथा-कीर्तन, धार्मिक आयोजन जैसे- प्रवचन, सत्संग, जागरण इत्यादि मे अपने समाज तथा मित्रजनों, रिश्तेदारों, सहयोगियों के यहां जाकर उनकी खुशी में हिस्सा लेना।

2. अपने परिचितों, मित्रों, सहयोगियों, रिश्तेदारों इत्यादि के यहां दु:ख के समय जैसे- चोरी होने, बीमार पड़ने, दुर्घटना होने, परीक्षा में फेल होने इत्यादि परिस्थितियों में जाकर संवेदना एवं सहानुभूति प्रकट करना तथा यथासंभव उनकी सहायता करना। किसी परिचित के यहां किसी व्यक्ति की मृत्यु होने पर उसके यहां जाकर उसे ढाढ़स बंधाना तथा हौसला देना।

3. किसी भी कल्याणकारी संस्था से जुड़कर समाज की यथासंभव सेवा एवं सहायता तन, मन, धन से करना। पारिवारिक बजट में इस हेतु यथासंभव दान हेतु प्रावधान करना।

4. भूले-भटकों को राह दिखाना।

5. नेत्रहीन, अपंगों, विकलांगों की सहायता करना, जैसे- उन्हें सड़क पार करवाना, गूगे व्यक्ति को लिखकर अपनी बात बताने हेतु मार्गदर्शन करना इत्यादि।

6. निर्धनतम व्यक्तियो (परिवारों) की शिक्षा, चिकित्सा, आवास, कन्या-विवाह इत्यादि में यथा-सामर्थ्य आर्थिक सहायता करना। किसी एक व्यक्ति को निशुल्क शिक्षा प्रदान करना।

7. किसी एक अनपढ़ व्यक्ति को साक्षर बनाना।

दाम्पत्य जीवन का परिवार एवं समाज के प्रति कर्त्तव्य

जैसा हम सभी जानते हैं कि प्राचीन काल से मानव की औसत आयु सौ वर्ष आंकी गई है, जिसे चार आश्रमों में बांटा गया है -

1. बाल्यकाल (बचपन+किशोरावस्था)	25 वर्ष तक
2. युवावस्था	25 से 50 वर्ष तक
3. प्रौढ़ावस्था	50 से 75 वर्ष तक
4. वृद्धावस्था	75 वर्ष से अधिक

विवाह के उपरांत प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में काफी परिवर्तन दृष्टिगोचर होते हैं। प्राय: विवाह की आयु 25 से 30 वर्ष के बीच मानी गई है, जिसमे व्यक्ति अपनी पढ़ाई (शिक्षा) पूरी कर धनार्जन के योग्य बन जाता है, यह व्यक्ति की युवावस्था का समय होता है। आइए देखें, दम्पति यानी पति एवं पत्नी के परिवार एव समाज के प्रति क्या-क्या कर्तव्य हो सकते है।

(अ) परिवार के प्रति कर्त्तव्य

1. संतानोत्पति अथवा वशवृद्धि करना।

2. बच्चों का समुचित लालन-पालन करना।

3. *बच्चो के स्वास्थ्य, शिक्षा एवं मनोरंजन के सभी संभव साधन जुटाना।*

4. *बच्चो का उत्साहवर्द्धन करना तथा समय-समय पर उन्हें* उचित परामर्श देना।

5. परिवार के खर्चो को वहन करने हेतु धनार्जन करना, जैसे- नौकरी, व्यवसाय, खेती-बाड़ी इत्यादि करना, कल-कारखाने लगाना तथा उनका संचालन करना इत्यादि।

6. परिवार के वृद्धजनों जैसे- माता-पिता, सास-ससुर, बड़े भ्राता-बहन, जेठ-जेठानी, ननद-नन्दोई, भाभी इत्यादि का समुचित आदर करना, उनकी यथासंभव सेवा करना, उनके अनुभवों से लाभ उठाना, घर के मामलों में उनका परामर्श तथा स्वीकृति लेना आदि।

7. घरेलू कार्यों जैसे- बच्चों के विवाह, उच्च-शिक्षा, चिकित्सा, भ्रमण इत्यादि भविष्य के खर्चों हेतु आय मे से कुछ राशि बचत के रूप में बचाना।

(ब) समाज के प्रति कर्त्तव्य

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। वह समाज में रहता है। अतः उसके समाज के प्रति भी कुछ कर्त्तव्य हैं, जो मोटे तौर पर इस प्रकार हो सकते हैं-

1. सामाजिक गतिविधियों, जैसे- विवाह, शादी की सालगिरह, जन्मोत्सव, कथा-कीर्तन, धार्मिक आयोजन जैसे- प्रवचन, सत्संग, जागरण इत्यादि मे अपने समाज तथा मित्रजनों, रिश्तेदारों, सहयोगियों के यहां जाकर उनकी खुशी में हिस्सा लेना।

2. अपने परिचितों, मित्रों, सहयोगियों, रिश्तेदारों इत्यादि के यहा दुःख के समय जैसे- चोरी होने, बीमार पड़ने, दुर्घटना होने, परीक्षा में फेल होने इत्यादि परिस्थितियों में जाकर संवेदना एवं सहानुभूति प्रकट करना तथा यथासंभव उनकी सहायता करना। किसी परिचित के यहां किसी व्यक्ति की मृत्यु होने पर उसके यहां जाकर उसे ढाढ़स बंधाना तथा हौसला देना।

3. किसी भी कल्याणकारी संस्था से जुड़कर समाज की यथासभव सेवा एवं सहायता तन, मन, धन से करना। पारिवारिक बजट में इस हेतु यथासभव दान हेतु प्रावधान करना।

4. भूले-भटकों को राह दिखाना।

5. नेत्रहीन, अपंगों, विकलांगों की सहायता करना, जैसे- उन्हें सड़क पार करवाना, गूंगे व्यक्ति को लिखकर अपनी बात बताने हेतु मार्गदर्शन करना इत्यादि।

6. निर्धनतम व्यक्तियो (परिवारों) की शिक्षा, चिकित्सा, आवास, कन्या-विवाह इत्यादि में यथा-सामर्थ्य आर्थिक सहायता करना। किसी एक व्यक्ति को निशुल्क शिक्षा प्रदान करना।

7. किसी एक अनपढ़ व्यक्ति को साक्षर बनाना।

विधवा-विडम्बना

विधवा होने का दुःख हिन्दू स्त्री के लिए ही नहीं समस्त समाज के लिए असहनीय प्रताड़ना व अपमान का प्रतीक है। विधवा होने के बाद भारतीय नारी के पास दो विकल्प होते हैं, या तो वह समाज की जूठन बनकर किसी विधवा आश्रम की शरण ले, शोषण व्यवस्था की मूक शिकार बनकर मोक्ष प्राप्ति का इंतज़ार करे या फिर रिश्तेदारों, परिचितों, मित्रों आदि के तानों और अत्याचारों को झेलती रहे। विधवा स्त्री के लिए समाज में विशेष रूप से बड़े ही क्रूर नियम है। वर्तमान समय में भी विधवा स्त्री श्रृंगार नहीं कर सकती। वह मंहगे चमक-दमक वाले वस्त्र नहीं पहन सकती। उसे कांच की चूड़िया, माथे पर बिंदी व मांग में सिंदूर भरना वर्जित है। कुछ प्रदेशों मे तो आज भी विधवा स्त्री का मांगलिक समारोहो में सम्मिलित होना वर्जित है। वस्तुतः ऐसे अवसरों पर उसका दिखना तक अशुभ माना गया है। उसे यत्नपूर्वक ऐसे अवसरों से दूर रखा जाता है। क्या ऐसा व्यवहार किसी विधुर पुरुष के साथ संभव है? पत्नी के मरने के बाद किसी विधुर पुरुष पर कोई बंधन नहीं होता। वह पत्नी की मृत्यु के तत्काल पश्चात शादी कर लेता है।

विधवा स्त्री सती होकर अपने कष्टों तथा अपमान से एकदम मुक्त हो जाती है। वह तिल-तिल कर नहीं मरती बल्कि आग का दरिया एक बार में ही पार कर शांत हो जाती है। उसे पहाड़-सा जीवन अकेले काटने का झंझट नही झेलना पड़ता। परंतु वे स्त्रियां, जो पति की मृत्यु के पश्चात लंबे समय तक जीवित रहती हैं, उन पर क्या गुज़रती है? देश के अधिकांश भागों में विधवा स्त्री को कुलक्षणी अथवा डाकिनी माना जाता है। घर की औरतें उसे ताने मारती हैं- "अपने आदमी को खा गई, अब और क्या खाएगी?" जैसे उस बेचारी विधवा ने ही अपने पति को मारा हो। सवर्ण जातियां, विशेषकर ब्राह्मण, ठाकुर वर्ग की विधवाओ की स्थिति और भी अधिक दयनीय है। राजपूतों में

तो किसी विधवा स्त्री को पति की मृत्यु के बाद प्रथम बारह महीनों में खाने के लिए रोटी तक नसीब नहीं होती। वह हंसी-मज़ाक नहीं कर सकती, उसे किसी रिश्तेदार, परिचित, मित्र आदि के घर नहीं जाने दिया जाता और न ही उसे किसी के पुत्र पैदा होने पर बधाई देने की इजाज़त है। पुनर्विवाह तो दूर की बात है, वह किसी पुरुष का हाथ तक नहीं थाम सकती। अगर वह ऐसा करती है तो पूरे खानादान की नाक कट जाती है। धर्म रसातल में चला जाता है। उसके लिए बिना ब्लाउज के लाल साड़ी पहनना व नंगे पांव चलना अनिवार्य है। खाना भी वह दिनभर मे बस एक बार खा सकती है, वह चारपाई या गद्दे पर नहीं सो सकती। रात को उसे अल्पाहार की छूट है। उसका साया भी अगर होम (हवन) पर पड़ जाए तो उसे अपशकुन माना जाता है। उसे आरती उतारने के अधिकार से वंचित रखा गया है, पर पूजा के बंदोबस्त में भाग ले सकती है। वह मनोरंजन के किसी भी कार्यक्रम में भाग नहीं ले सकती। उसे परम्परागत नाटक, हरिकथा, उपासना, कीर्तन, प्रवचन में भाग लेने की अनुमति है। क्या किसी भी पुरुष पर ऐसे प्रतिबंध है? शायद नहीं। तो स्त्री पर ऐसे प्रतिबंध क्यो?

विधवा स्त्री को 'रांड' की संज्ञा भी दी जाती है। कहावत है- 'रांड रंडापा काट ले, यदि रडवे काटन दें।' अर्थात- विधवा स्त्री अपना वैधव्य जीवन काट सकती है, यदि पुरुष की कामेच्छा की शिकार न बने।

अनेक पुरुष कामातुर होकर विधवाओं, विशेषकर युवा विधवाओं से शारीरिक व मानसिक संबंध स्थापित कर लेते हैं, उनकी थोड़ी आर्थिक सहायता व सहानुभूति भी शायद कर देते हैं, परंतु वे कपटपूर्वक व्यवहार नहीं छोड़ पाते। जो लोग ऐसी विधवाओं और बच्चों का सामाजिक बहिष्कार करते हैं, उनको गालियां देते है, वे जानते है कि इस कृत्य में कहीं न कही, कोई न कोई पुरुष ज़िम्मेदार है, साझीदार है। अवैध संबंधों के लिए स्त्री व पुरुष दोनों ही नैतिक व शारीरिक रूप से ज़िम्मेदार होते है। लेकिन दंडित होती है, बेचारी विधवा, उसका सामाजिक बहिष्कार होता है, उसका परिवार बिरादरी से बाहर कर दिया जाता है। विधवाओं के संबंध में अनेक अंधविश्वास प्रचलित है। सिर घुटाये यदि कोई विधवा सामने पड़ जाये तो बहुत अपशकुन माना जाता है। जो लोग इसे मानते हैं, वे तुरंत मंदिर में जाकर भगवान से प्रार्थना करते है।

विधवाओं को बलात् परिवार व समाज से बाहर करने के पीछे मूलतः आर्थिक कारण भी है। जब भी कोई स्त्री विधवा हो जाती है तो उसकी ससुराल के पुरुष सदस्य घर की अन्य स्त्रियों की सहायता से उसको उसके पति तथा ससुर की संपत्ति से बेदखल करने का प्रयास करते है। पितृ-गृह में भाई, चाचा, ताऊ तथा अन्य परिवार-जन कुचक्र रचकर उसे घर से बाहर रखने का प्रयत्न करते हैं। यदि विधवा मायके मे रहेगी तो जाहिर है, अपना अधिकार पैतृक संपत्ति में से मांगेगी। इसलिए उसे उपदेश दिया जाता है कि शादी के बाद स्त्री की अर्थी ससुराल से उठती है, अत: वह वहीं रहे।

भारत मे तीर्थ-स्थानों, वृदांवन, हरिद्वार, मथुरा, बद्रीनाथ, वैष्णो-देवी, केदारनाथ में विशेषकर विधवा-आश्रम बने हुए है, जहा विधवाएं भजन-कीर्तन कर अपना जीवन-यापन करती है। इन आश्रमों मे भी इन विधवाओं की दशा दयनीय है। ये आश्रम दान तथा चंदों के बल पर चलते है। अत: दया पर पलने वाली ये विधवाएं दलालो के माध्यम से देह-व्यापार में लिप्त हो जाती हैं। इन विधवाओं को भीख मांगने के लिए मजबूर किया जाता है। सुविधा के नाम पर तन ढकने के लिए सफेद साड़ी-ब्लाउज तथा दो वक्त का खाना नसीब होता है, जिसमें बिना चुपड़ी रोटी, दाल, चावल व चुटकी भर नमक दिया जाता है।

अब प्रश्न उठता है कि इस समस्या का सामाधान कैसे हो? किसी भी स्त्री का विधवा न होना, उसके बस में नहीं है। यह सब भाग्य पर निर्भर करता है। अत: समाज में परिवर्तन की आवश्यकता है, जो धीरे-धीरे आ भी रहा है। परिवारजनों को सोचना चाहिए कि यदि घरेलु नौकर भी रखा जाये तो उसे वेतन देना पड़ता है, विधवा स्त्री घरेलू कार्यो में पूर्ण सहयोग करती है। अत: उसे स्नेह एवं सहानुभूति तथा आदर सहित परिवार के सदस्य का दर्जा देना चाहिए। अभिभावकों को अपनी लड़कियों को अच्छी शिक्षा देनी चाहिए, जिससे उनके जीवन का अप्रत्यक्ष रूप से बीमा हो सके। दुर्भाग्यवश यदि पति की मृत्यु हो जाती है तो पत्नी को पति के कार्यालय में क्षतिपूरक सीट पर नौकरी अनुकम्पा के आधार पर मिल सकती है, जिससे वह समाज तथा परिवार में सम्मानपूर्वक आत्मनिर्भर बनकर जीवन गुज़ार सकती है तथा अपनी संतान को अच्छी शिक्षा तथा संस्कार देकर पालन-पोषण करके अपने पांवो पर खड़ा कर सकती है। अभिभावको को लड़कियों को स्वरोज़गार के लघुकालीन कोर्सेज भी शादी से पूर्व करवा देने चाहिए, इससे भी लड़कियां किसी विकट परिस्थिति अथवा

आर्थिक तंगी में परिवार को आर्थिक सहयोग देने मे सक्षम हो सकती है, जैसे-सिलाई, कढ़ाई, पेंटिंग, कुकिंग-कोर्सेज, ब्यूटीशियन, मेंहदी मांडना, खिलौने बनाना, अचार बनाना आदि के कोर्सेज। इससे लड़कियां विधवा, जैसे-आपातकाल में अपने आप को आत्मनिर्भर बना सकेंगी तथा जीवन को बोझ न समझकर कर्त्तव्य पालन करते हुए अपनी संतान का भविष्य उज्जवल बनाने में वांछित प्रयास कर सकेंगी।

समाज की परम्पराओं मान्यताओं तथा रीति-रिवाजो में भी विधवाओं की दशा सुधारने के लिए परिवर्तन की आवश्यकता है। इसके लिए जन-जागरण तथा युवा-वर्ग का सहयोग अनिवार्य है। समाज को विधवा को पुनर्विवाह के लिए स्वीकृति देनी चाहिए, जो अब कुछ हद तक होने भी लगा है। यदि किसी स्त्री का पति यौवनावस्था में ही मर जाता है, तो वह बाकी ढेर सारी ज़िंदगी किसके सहारे काटेगी? अत: पुनर्विवाह अनिवार्य तथा परमावश्यक बन जाता है। युवाओं को विधवा-विवाह में सहयोग कर समाज-कल्याण के उदाहरण प्रस्तुत करने चाहिए। इसके अतिरिक्त अभिभावकों को विवाह में दहेज के रूप में नकदी दी जाने वाली राशि (यदि हो तो) लड़की के नाम से बैंक मे सावधि जमा के रूप में देनी चाहिए ताकि आड़े समय पर लड़की उस राशि और उसके ब्याज से अपना तथा अपने परिवार का भरन-पोषण कर सके।

यह उपाय उदाहणार्थ है, समग्र सूची नहीं। सरकार द्वारा भी विधवा पैशन दी जाती है, कुछ सामाजिक संस्थाएं भी विधवा-कल्याण कार्यक्रम के तहत विधवाओं को रोज़गार तथा आर्थिक सहायता मुहैया करवाती है, जो एक अच्छी शुरूआत तथा प्रंशसनीय प्रयास है। □

नारी शिक्षा : आवश्यकता तथा महत्व

पुरुष शिक्षा के साथ-साथ स्त्री शिक्षा का भी अपना महत्व है। स्वतत्रता प्राप्ति के पश्चात नारी-शिक्षा मे क्रांतिकारी बदलाव आया है। स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व स्त्री को गृह स्वामिनी के रूप में ही देखा जाता था। स्त्री जाति ने गृह कार्यों का बखूबी सम्पन्न करने के साथ-साथ पुरुष जाति को भी आदर्श तथा प्रेरणा प्रदान करने में अहम् भूमिका निभाई है। वह अपने पति की मान-मर्यादा व स्वाभिमान के लिए प्राणों तक की आहूति देने के लिए स्वयं तो अग्रणी रही ही हैं, साथ ही उसे भी प्रेरित किया है। इसके लिए रानी लक्ष्मीबाई, पुतलीबाई, हाड़ारानी, पद्‌मिनी आदि का नाम सदैव सम्मान से लिया जाता है।

समय परिवर्तनशील होता है। देश में अनेक परिवर्तन आए। अनेक सामाजिक, राजनैतिक क्रातियां हुईं और इन सबका प्रभाव नारी जाति पर पड़ा। मध्ययुग में नारी का पूर्ववत आदर सम्मान नहीं रहा। पूजनीय व आदरणीय के स्थान पर वह भोग-विलास की वस्तु बनकर रह गई। परंतु आवश्यकता तथा महत्व को कभी भी नकारा नहीं जा सकता। जिस प्रकार 'तार रहित वीणा' तथा 'चक्रहीन रथ' की कल्पना तक नहीं की जा सकती, उसी प्रकार नारी-रहित समाज की सोच ही व्यर्थ है। समाज गाड़ी के समान है। जिस प्रकार एक पहिये से गाड़ी नहीं चल सकती, उसके लिए दोनो पहियों का होना अनिवार्य है, वैसे ही समाज रूपी गाड़ी को चलाने के लिए पुरुष और स्त्री की स्थिति समान होना परमावश्यक है। यदि दोनों में से एक भी निर्बल है तो समाज की उन्नति तथा विकास सुचारू रूप से नहीं हो सकता अर्थात् पुरुष तथा स्त्री का शिक्षित तथा गुणी होना परमावश्यक है। तभी उनका दाम्पत्य जीवन भी सुखी होगा, अन्यथा वे एक-दूसरे के विचारो तथा भावनाओं से परस्पर सामंजस्य स्थापित नहीं कर सकेंगे और उनके प्रेम की दूरी प्रतिदिन बढ़ने के कारण गृह-क्लेश तथा कलह शुरू हो जायेगा।

वर्तमान की सभ्य तथा सुशिक्षित नारी किसी पर निर्भर न रहकर अपना जीवन-यापन करने में स्वयं सक्षम हो जाती है। यह आत्मविश्वास के साथ घर की चार-दिवारी से बाहर निकलकर अपने अधिकारों की मांग कर सकती है तथा अपने कर्तव्यों का (आवश्यकता पड़ने पर) भली प्रकार से पालन कर सकती है। जैसे- आवश्यकता पड़ने पर पति के साथ स्वयं नौकरी करके घर को सुचारू रूप से चला सकती है, बच्चों को पढ़ा सकती है, बीमारी के समय अस्वस्थ परिवारजन की चिकित्सा करवा सकती है, शॉपिंग कर सकती है आदि। आर्थिक तंगी अथवा कम आय के समय पति की सहयोगी बन परिवार का जीवन-स्तर उठाने में आवश्यक सहयोग तथा सलाह दे सकती है।

एक बालक को पढ़ाना एक व्यक्ति को पढ़ाना है, परंतु एक बालिका को पढ़ाना, एक परिवार को पढ़ाना है। बालिका शादी के पश्चात बच्चों की मां बनती है। सबको ज्ञात ही है कि बच्चों का प्रथम तथा महत्वपूर्ण गुरू मां ही होती है, जो उसे अच्छी शिक्षा देकर महान बनने को सदैव प्रेरित करती है। यदि बालक की माता शिक्षित होगी तो वह उनके पढ़ाई के कार्यों में भी उनकी मदद करेगी, उन्हें अच्छे संस्कार प्रदान करने के लिए महापुरुषों की जीवनियां, कथाएं, कहानियां आदि सुनाएगी और उन्हें पढ़ने को प्रेरित करेगी। स्त्री जाति की एक विशेषता है कि वह अपने आपको समय, काल और परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तित करती रहती है। जन्म लेने पर वह माता-पिता व परिवार की पुत्री के रूप में सेवा करती है, यौवनावस्था में पति के घर जाकर सास-ससुर की सेवा तथा पति के सुख के लिए उसकी भोग-विलासता की वस्तु बन जाती है, पति की दीर्घायु की कामना के लिए व्रत इत्यादि करती है, पुत्र को जन्म देने पर आप गीले में सोकर पुत्र को सूखे मे सुलाकर आंचल का दूध पिलाकर पालती है। इस प्रकार अनेक कष्ट झेलकर परिवार का पालन-पोषण करती है। वृद्धावस्था मे पुत्र की आज्ञा का पालन करती है तथा पति की सेवा करती है।

इस प्रकार हम यह कह सकते हैं कि जब तक समाज मे बालिकाओ को सुशिक्षित नहीं किया जाएगा तब तक समाज का उत्थान तथा विकास असंभव है। आज नारी उच्च-शिक्षा प्राप्त कर अपने अधिकारो एवं कर्तव्यो का पालन करती हुई, जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में पुरुषों के समान सफलता प्राप्त करती हुई, समाज के उत्थान में सहभागी बन गई है। जैसे- श्रीमती इंदिरा गांधी, श्रीमती सोनिया गांधी, किरन बेदी, कल्पना चावला, वसुन्धरा राजे

भारतीय समाज में नारी का स्थान

यदि हम प्राचीनकाल में भारतीय नारी की स्थिति का अध्ययन करें तो पाते है कि नारी को पुरुष से अधिक सम्मान प्राप्त था। उसे 'मां' या 'देवी' तुल्य समझा जाता था। 'यत्र नार्यस्तु पूज्यते रमन्ते तत्र देवता' यानी कि जहां पर नारी की पूजा होती है, वहां देवता निवास करते है। नारी को लक्ष्मी (धन), शक्ति (दुर्गा) व बुद्धि (सरस्वती) का प्रतीक स्वरूप माना जाता था।

वर्तमान समय में नारी की सोच, मानसिकता, जीवन स्तर व जीवन शैली में काफी परिवर्तन आ गया है। जहां एक तरफ अपने बलबूते पर ऊंचे पदो पर आसीन होकर महिलाएं सम्मान प्राप्त कर रही है तो दूसरी तरफ उनके प्रति हिंसा व बलात्कार की घटनाएं निरन्तर बढ़ रही है। इस प्रकार की स्थिति यह सोचने पर मजबूर कर रही है कि आखिर कौन जिम्मेवार है, ऐसी बढ़ती अनैतिक तथा क्रूर घटनाओं के लिए? क्या आदिकाल से ही नारी का शोषण होता रहा है? या नारी की ऐसी दुर्दशा कब व क्यों शुरू हुई? तथा अब क्या किया जा सकता है, ऐसी अमानवीय तथा घिनौनी प्रवृत्तियों पर रोक लगाने के लिए? यह एक विचारणीय प्रश्न है।

अब यदि हम विचार करें कि प्राचीन काल मे अगर नारी का शोषण व अनादर नहीं होता था तो फिर बाल-विवाह, सती-प्रथा, बहू-विवाह, नारी को शिक्षा से वंचित रखना, कन्या-भ्रूण हत्या, कन्या हत्या एवं विधवाओं की दुर्दशा इत्यादि कुरीतिया हिन्दूधर्म तथा समाज में कब व किन परिस्थितियो में आई? तथा इन कुरीतियों का विरोध कब और कैसे हुआ व उनके परिणाम क्या थे? यदि हम इतिहास पर दृष्टि डालें तो पायेगे कि ये सभी कुरीतियां मुगलकाल की देन है। इसे भारत का अंधकार युग कहें तो कोई अतिशयोक्ति नही होगी। इस काल में मुगल शासकों ने काफी अत्याचार किये, जिसमें

औरंगजेब का नाम तथा कार्य सभी जानते हैं। मुगल शासकों ने हिन्दू सम्प्रदाय को गुलामों की तरह रखा तथा काफी यातनाएं भी दीं। इतिहास साक्षी है कि मुगलकाल में हिन्दुओं की कन्याओं तथा महिलाओं का अपहरण व जबरन विवाह या बलात्कार तक होने लगे, जिससे बचने के लिए कन्या को पैदा होते ही मारने की प्रथा, शिक्षा से वंचित कर बाल-विवाह, सतीप्रथा, पर्दाप्रथा आदि कुप्रथाएं भारतीय समाज में मजबूरी में सुरक्षात्मक उपायों के रूप में अपनाई गई। मुगल शासक काफी मदिरापान तथा भोग-विलास के शौकीन हुआ करते थे तथा सत्ता के बल पर किसी भी कन्या अथवा स्त्री को अपनी हवस का शिकार बना लेते थे। मदिरा के साथ साकी तथा मुजरा आदि की महफिलें तो होनी साधारण सी बात समझी जाती थीं। अत: इस काल में नारी की अस्मिता को खतरा था तथा हिन्दू धर्म की बजाय इस्लाम धर्म का काफी प्रभाव था। अत: धर्म परिवर्तन भी इस युग मे काफी संख्या में कराये गये। किसी को सत्ता का लालच तो किसी को धन-सम्पदा का लोभ देकर मुगल सम्राटों ने धर्म परिवर्तन करवा डाले। फलत: काफी लोग हिन्दू से मुसलमान बन गए, जिससे हिन्दू समाज के लोग कम हो गए तथा यातनाएं, प्रताड़ना और जुर्म सहने को मजबूर हुए।

19वीं सदी में भारत में नारी की दुर्दशा में आर्य समाज ने सुधार लाने का बीड़ा उठाया जिसमें स्वामी विवेकानंद, राजा राममोहन राय, महात्मा गांधी इत्यादि महापुरुषों ने बाल-विवाह, सती-प्रथा आदि कुरीतियों के विरोध में आवाज उठाई तथा नारी को शिक्षा का अधिकार दिलाने के प्रयास शुरू किए। धीरे-धीरे समस्त भारत में नारी स्वतत्रंता का बिगुल बज गया। मुगल काल का पतन हुआ तथा अंग्रेज़ों ने सत्ता हथिया ली। अंग्रेज़ी भाषा का प्रचार-प्रसार हुआ तथा पश्चिमी सभ्यता तथा संस्कृति का हमारे समाज में दखल शुरू हो गया। 15 अगस्त 1947 को भारत ने काफी संघर्ष के बाद वापिस आज़ादी प्राप्त की तथा पं. जवाहरलाल नेहरू भारत के प्रथम प्रधानमंत्री बने।

पाश्चात्य सभ्यता के कारण नारी जाति की सभ्यता में काफी परिवर्तन आया। स्त्रियों ने आभूषणों को पहनना छोड़ दिया, फैशन की गति तथा [illegible] बढ़ी, आधुनिकता के नाम पर अश्लीलता तथा नग्नता ने प्रवेश [illegible] सहनशीलता का स्थान 'अंहकार' या अहम ने लेना शुरू किया। परि[illegible] लोगों की ज़रूरतें तथा सोच बदली और संयुक्त परिवार टूटने लगे, [illegible]

और भी असुरक्षित तथा असहाय हो गई। यदि हम सामाजिक संरचना तथा नारी-शोषण पर गहराई से सोचें तो पाते हैं कि नारी शोषण के लिए पुरुष से अधिक स्वयं नारी ही दोषी है, जैसे कि सास-बहू, ननद-भाभी, देवरानी-जेठानी, जो सभी महिलाएं ही होती हैं, उनके नोक-झोंक के किस्से जग जाहिर हैं। आधुनिकता के नाम पर अश्लीलता तथा नग्नता पुरुषों में पाशविक-यौन प्रवृत्ति को उत्तेजित करने में काफी सहायक होते हैं, जिससे बलात्कार, व्यभिचार, देह-व्यवसाय आदि की घटनाएं बढ़ रही हैं। कन्या-भ्रूण हत्या करने तथा करवाने वाली डॉक्टर तथा प्रसूता-स्त्री दोनों महिला होती हैं। अतः नारी को स्वयं को भी सुधारना होगा तथा अपने कर्त्तव्यों व दायित्वों को अपनाना होगा।

एक नारी, जो मां बनती है, उसे अपने बच्चों में अच्छे संस्कार व आदतें डालनी होंगी। एक मां ही बच्चे की प्रथम तथा महत्वपूर्ण अध्यापिका अथवा गुरू भी होती है। यदि ऐसा हुआ तो भारतीय समाज में आने वाली पीढ़ियों में कुरीतियों तथा कुप्रथाओं का समापन हो सकेगा। तभी नारी अपना खोया हुआ गौरव तथा सम्मान प्राप्त कर सकती है। नारी को पुरुषों के बराबर ही नहीं वरन् उनसे भी ऊंचा स्थान मिल सकता है बशर्ते नारी स्वयं इस ओर सार्थक तथा प्रभावकारी कदम उठाकर पहल करे। नारी समाज की नींव तथा धुरी दोनों है। यदि भवन की नींव मजबूत होती है तो उसकी उम्र ज्यादा होती है। बच्चों में बाल्यकाल से ही अच्छे सस्कार देना, अच्छी आदतें डालना आदि कार्य 'मां' का है, जो एक महिला होती है। इसी प्रकार नारी से परिवार एवं समाज को काफी अपेक्षाएं होती हैं, जिन्हें पूरा करना नारी अपना कर्त्तव्य समझे तथा शालीनता एवं अनुशासन में रहे तो वह समाज तथा परिवार में धुरी की भूमिका निभा सकती है और अपना मान-सम्मान पुनः प्राप्त कर सकती है। ☐

दहेज-दानव

दहेज-प्रथा का इतिहास क्या है? इसका जन्म कब और कैसे हुआ, कब इससे बीभत्स रूप ग्रहण किया। श्री चंदवली त्रिपाठी अपनी पुस्तक 'भारतीय समाज में नारी आदर्शों का विकास' के सोलहवें अध्याय के शीर्षक समाज के विकास में बाधाएं दहेज-प्रथा तथा पर्दा-प्रथा का वर्णन हमें मिलता है। महाभारत तथा रामायण का में भी दहेज-प्रथा तथा पर्दा-प्रथा का वर्णन हमे मिलता है। महाभारत तथा रामायण काल में भी दहेज-प्रथा प्रचलित थी। लेखक के अनुसार बहुत प्राचीन काल से महाभारत काल तक दहेज प्रथा किसी न किसी रूप में प्रचलित थी। महाभारत काल में कन्या-पक्ष वाले वर-पक्ष से धन लेकर कन्या का विवाह करते थे। इस धन को कन्या-शुल्क कहा जाता था। उस युग में समर्थ राजा या राजकुमार विवाह योग्य कन्याओं का बलात् अपहरण करके अपना, अपने पुत्रो व आश्रितो का विवाह करते थे। इन कन्याओ को वीर-शुल्क कहा जाता था। महाराज कुमार भीष्म ने अपने भाई के विवाह हेतु अम्बा, अम्बिका व अम्बालिका नामक तीन राजकन्याओं का बलपूर्वक अपहरण किया था। सीता व द्रोपदी के विवाह में भी वर-पक्ष को अपनी युद्धक्षमता का प्रदर्शन करना था। अनेक प्रतिष्ठित राजपरिवारों की कन्याओं का विवाह कन्या शुल्क लेकर करने का वर्णन मिलता है। कालान्तर मे इस प्रथा की घोर निन्दा की गई तथा ऐसे विवाहो को कन्या विक्रय कहकर निषिद्ध घोषित किया।

रामायण तथा महाभारत काल में समर्थ लोगों द्वारा यौतुक (दहेज) देने के उदाहरण बहुत प्रसिद्ध हैं। राम तथा उनके भाइयों को विवाहोपलक्ष्य पर उन्हे तथा राजा दशरथ को जनक ने जो तरह-तरह के और प्रचुर मात्रा मे उपहार दिये, उनकी परिसंख्या नहीं हो सकती। द्रोपदी के विवाह के समय महाराज द्रुपद ने और उत्तरा के विवाह के अवसर पर महाराज विराट ने अपार

उपहार यौतुक के रूप मे देकर घरवालों तथा उनके संबंधियों को मुग्ध क
दिया था। यौतुक मे बहूमूल्य वस्त्र-आभूषणों के अतिरिक्त भूमि अथवा गा
तथा पशुधन, जैसे- गाय, घोड़ा, हाथी, बैल, भैंस आदि भी दिये जाते थे। पर
यौतुक कन्यापक्ष की स्वेच्छा तथा सामर्थ्य पर अवलंबित था।

प्रारंभिक अवस्था में दहेज-प्रथा में कोई बुराई नही थी। कन्यादान के साथ-साथ जहां वरपक्ष से कुछ लेना निंदा माना जाता था, उसे विवाह के सम यथाशक्ति वस्त्र-अलकार और वाहन (रथ) आदि देने की प्रथा प्रशंसनी समझी जाती थी। रामायण काल मे कन्यापक्ष वरपक्ष को यौतुक (दहेज) देत था परंतु वैदिक काल से लेकर महाभारत काल तक वरपक्ष नहीं अपितु कन्य पक्ष दहेज प्राप्त करता था। वैदिक काल से लेकर महाभारत काल तक अविवाहित युवती पति स्वयं पंसद करती थी। वे स्वयंवर स्थल तक अपनी सखियों व दासियों के साथ खुले मुंह (बेपर्दा) पहुचकर राजाओं व राजकुमारो के मध्य घूमती थीं, अपनी पसंद के युवक से विवाह करती थी। उन पर जाति, धर्म, दहेज तथा उम्र का कोई अंकुश नहीं होता था। सावित्री ने दरिद्र लकड़हारे सत्यवान का वरण युवावस्था में स्वतत्रता-पूर्वक किया था। जब उसके पिता को ज्ञात हुआ कि सत्यवान की जीवन-यात्रा में मात्र एक वर्ष ही शेष है, तब उन्होंने अपनी पुत्री से आग्रह किया था कि सत्यवान को छोड़कर वह किसी अन्य पुरुष का वरण कर ले। परंतु राजपुत्री सावित्री जब अपने निर्णय पर अडिग रही, तब राजा ने अपनी पुत्री का विवाह सत्यवान से ही कर दिया था। महाभारत काल मे लड़कियां अपनी पंसद के युवकों के साथ भाग भी जाती थी। रुक्मिणी (कृष्ण की पत्नी) व सुभद्रा (अर्जुन की पत्नी) ने ऐसे ही साहसिक कार्य किए थे। द्रोपदी-स्वयंवर में जब कर्ण मछली की आख बेधने के लिए आगे बढ़ा तो द्रोपदी ने दृढ़तापूर्वक घोषणा कर दी थी कि मै सूतपुत्र से विवाह नहीं करूंगी। उसकी इस इच्छा को आदेश मानकर कर्ण को बैठना पड़ा था।

प्रश्न उठता है कि इतने विकसित, उदार, समृद्ध तथा स्वतत्र हिन्दू समाज मे लड़की का विवाह दहेज के साथ कैसे जुड़ गया। संभवतः इसका जन्म उत्तर महाभारत काल में ही हो गया था। लड़कियों का विवाह कम उम्र मे ही जब होने लगा तो वे शिक्षा से वंचित कर दी गईं। उनके लिए वेदो का अध्ययन करना ही नही बल्कि वेद व उपनिषद् सुनना वर्जित कर दिया गया। उनकी

गणना शूद्रों के साथ होने लगी। जाहिर है अशिक्षित लड़की अपने अभिभावक (माता-पिता) के लिए बोझ बन गई। अनपढ़ लड़की का वर चुनने का अधिकार तक लड़कियों से छिन गया। स्मृति शास्त्रों में इस बात पर ज़ोर दिया गया कि ऋतुमति होने से पूर्व कन्या का विवाह न करने से पिता को भ्रूण हत्या का पाप लगता है। अतः अभिभावको ने अपनी लड़कियों का विवाह बाल्याकाल में ही करने के लिए वर पक्ष को दान-दहेज देकर बहलाना-फुसलाना प्रारम्भ कर दिया। लड़के का पिता भी विवाह के आदर्श को भूलकर अल्पवयस्क लड़के का विवाह धन के लालच में करने लगा। इस प्रकार दहेज-प्रथा के साथ-साथ बाल-विवाह की कुप्रथा भी शुरू हो गई। लालच इतना बढ़ा कि लड़के के पिता लड़की के पिता की कठिनाइयों, चिंताओं तथा मजबूरी का अनुचित लाभ उठाकर उससे तिलक अथवा दहेज के रूप मे बड़ी से बड़ी रकम नकद अथवा अन्य मंहगी वस्तुएं ठहरौनी के रूप में तय करने लगे। इस प्रकार स्वेच्छा तथा यथाशक्ति के अनुसार यौतुक (दहेज) देने की प्रथा में अनिवार्य दहेज की ठहरानी का प्रवेश हो गया।

दहेज-प्रथा का पालन-पोषण करने में इस देश पर विदेशी आक्रमणों ने आग में घी का काम किया। मुस्लिम आक्रमणकर्ताओं ने जब इस देश को आक्रांत किया तो उन्होने इस देश की धन-सम्पदा को ही नहीं लूटा बल्कि यहां के पुरुष समुदाय को अपमानित कर लड़कियों (विशेषकर अवबाहित) का अपहरण करके उन्हें अपने हरम में बेगम या रखैल बनाकर रखा। अतः इस अपमान से बचने के लिए लड़कियों के अभिभावकों ने अपनी लड़कियों का विवाह शीघ्र करने का प्रयास प्रारम्भ कर दिया। अनपढ़, अल्पवयस्क लड़की को वधू बनाकर लाना वरपक्ष के लिए सर्वथा अनुपयोगी घाटे का सौदा समझा जाने लगा। बहुत छोटी बच्ची घर के काम-काज तक मे कोई सहयोग नहीं दे सकती थी, अतः उसके साथ दहेज में अनिवार्यतः मोटी रकम व अन्य मंहगी वस्तुएं ली जाने लगीं। वीरगति को प्राप्त राजाओं की रानियों ने अपमान से बचने के लिए जौहर (सतीप्रथा) का सहारा लिया। मध्यकाल मे जब मुगल शासकों का इस देश पर शासन स्थापित हो गया तो हिन्दू समाज उनकी सभ्यता तथा संस्कृति से अछूता नहीं रह सका।

हिन्दू समाज मे मुस्लिम समाज से दो बुराइया आई - लड़कियों को पढ़ाना-लिखाना बद करें तथा पर्दा-प्रथा अपनाये जाने के कारण मुगल शासक

किसी भी सुंदर नवयौवना लड़की को यदि पसंद कर लेते थे तो शाही आदेश देकर उसे अपने महल में बुलाकर अपनी बेगम अथवा रखैल बना लेते थे।

दहेज-प्रथा, जो प्रारम्भ में एक विशेष वर्ग (धनी वर्ग) में थी, वह अब समस्त मानव समुदाय में व्याप्त है। यह केवल हिन्दुओं में ही नहीं वरन् मुस्लिम, ईसाई तथा सिक्ख समुदायों में भी प्रचलित है।

दहेज-दानव को प्रभावी ढंग से रोकने के लिए अनेक कानून समय-समय पर बनाये गए तथा समाज में व्यवस्थाएं भी है परंतु यह कम होने अथवा समाप्त होने की बजाय बढ़ता ही जा रहा है। कतिपय जातियों के मंचो से सामुहिक विवाह समारोहों की घोषणा की जाती है तथा ये विवाह बड़ी सादगी से सम्पन्न भी होते हैं परंतु लड़की पक्ष के अभिभावक विवाह मंडप तक जाने से पूर्व मुंहमांगी रकम का लेन-देन चुपचाप कर लेते हैं। धन का लालच मानवीय कमज़ोरी है। बहुत समय पहले शारदा एक्ट पारित हुआ था, जिससे बाल-विहाह गैर कानूनी घोषित किया गया था। पर परिणाम क्या निकला? आज भी बाल-विवाह धड़ल्ले से हो रहे हैं।

दहेज-प्रथा पर अंकुश लगाने के लिए अथवा इसे पूर्णतः समाप्त करने के लिए युवा-वर्ग को आगे आना होगा। लड़कियां यदि सहानुभूतिपूर्वक दहेज लोभी युवकों से विवाह प्रस्ताव अस्वीकार करना शुरू करे तो निश्चय ही दहेज रूपी दानव अपनी मौत स्वयं मर जायेगा। दूसरे, यदि युवा लड़के दहेज विरोधी बनें तो इस समस्या का निदान हो सकता है। आधुनिक युग में अभिभावक अपनी पुत्रियों की शिक्षा की गभीरता से व्यवस्था करते है, उन्हें डॉक्टर, इंजीनियर, बैंक मैनेजर, प्रशासनिक अधिकारी, वैज्ञानिक, पायलट, सेना एवं पुलिस अधिकारी तक बनाने की प्रयास करते है तथा बनाते भी है, फिर भी दहेज की मांग प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से लड़के वाले कर लेते हैं। ऐसा क्यो? विवाह के बाद भी वधू को दहेज लाने के लिए कहना कहां तक न्यायोचित है, परतु आये दिन समाचारपत्रो, टी.वी पर बहुओं को जलाकर अथवा गला घोटकर मारने की खबरे पढ़ने को मिलती है।

अतः दहेज दानव रूपी कलंक को समाप्त करने के लिए सामाजिक क्रांति की आवश्यकता है। दहेज-प्रदर्शन दहेज-प्रथा को उकसाता है। अतः दहेज-प्रदर्शन पर कानूनी तौर पर प्रतिबंध लगना चाहिए तथा सामाजिक सस्थाओं को सरकार को सहयोग देना चाहिए। समाज के प्रबुद्ध तथा सम्पन्न

व्यक्तियों को दहेज का विरोध करने के लिए एक जन-आंदोलन शुरू करना चाहिए, जिससे समाज में नई चेतना आये। आजकल कई स्वयं-सेवी संस्थाएं स्कूलों, कॉलेजों में जाकर छात्र-छात्राओ से दहेज-विरोधी शपथ दिलवा रही हैं, जो एक अच्छा तथा सराहनीय प्रयास है। दहेज रूपी दानव से मुक्ति का एकमात्र उपाय जन-जागरण ही है, जो हम सबको अपनाना होगा। ❑

अवसाद (डिप्रशन) : शंकाएं तथा समाधान

अवसाद एक मानसिक रोग है। मानसिक असंतुलन इसका कारण है, जो मानसिक कमज़ोरी, सुस्ती, व्यक्तिगत असफलता, इच्छा शक्ति की कमी, निर्णय लेने मे हिचकिचाहट अथवा असमर्थता या जोखिम उठाने में भय अथवा आशंका स्वआत्मविश्वास की कमी आदि का परिणाम नहीं है और न ही देवी-देवताओ के प्रकोप, भूत-प्रेत, जादू-टोना, तत्र-मंत्र आदि के परिणामस्वरूप होता है। अन्य शारीरिक रोगों की भांति इसके भी शारीरिक, मानसिक लक्षण होते है।

विश्व स्वास्थ्य सगठन (WHO) की स्वास्थ्य परिभाषा के अनुसार - 'स्वास्थ्य वह अवस्था है, जिसमें व्यक्ति अपने आपको शारीरिक, सामाजिक, आर्थिक, मानसिक और आध्यात्मिक रूप से सुखी अनुभव करता है। केवल रोगो का न होना ही स्वास्थ्य नही है।' शारीरिक रूप से विकलांग व्यक्ति को समाज मे सहानुभूति आसानी से प्राप्त हो जाती है, परंतु मानसिक स्वास्थ्य से सबधित रोग को स्वीकार करने में समाज हिचकिचाता है।

अवसाद क्या है?

वास्तव मे अवसाद विभिन्न रोग लक्षणो का एक समूह है। प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन में समय-समय पर इसका अनुभव प्राप्त करता है। प्रायः 10 में से एक व्यक्ति किसी न किसी रूप मे अपने जीवन काल में अवसाद की स्थिति से गुज़रता है। यह रोग आधुनिकता की उपज हो, ऐसा भी नही है। प्राचीन काल मे भी इसका अस्तित्व देखने को मिलता है। महाभारत काल मे जब अर्जुन ने देखा कि युद्ध भूमि मे अपने बांधव जनों, गुरुओ आदि से लड़ना होगा तो वह अवसाद मे घिर गया था और भगवान श्रीकृष्ण ने सारथी के रूप मे गीता के द्वारा मनोवैज्ञानिक रूप से सत्य-असत्य की प्रेरणा तथा उपदेश

देकर उसे अवसाद की स्थिति से उबारा था। अब्राहिम लिंकन, महारानी विक्टोरिया, विंस्टन चर्चिल, अर्नेस्ट हैमिंग्वे, श्रीमती गांधी जैसे सुप्रसिद्ध व्यक्तित्व भी इस रोग से पीड़ित रहे हैं।

अवसाद के लक्षण

मानसिक लक्षण : लंबे समय तक नकारात्मक सोच या दुखी मनोदशा। उत्साह विभिन्न गतिविधियों में रुचि एवं उत्साह का अभाव, आत्मविश्वास की कमी, लगतातार अपने आप का कोसना अथवा पछतावा करना, निराशावादी दृष्टिकोण, विस्मरण अथवा स्मरण शक्ति की कमी, चिंता, घबराहट, अकेलापन, स्वभाव में चिड़चिड़ापन, नशों अथवा व्यसनों की ओर झुकाव, अपने आपको असहाय, दुर्बल तथा असक्षम समझने की स्थिति आदि।

शारीरिक लक्षण : नींद न आना, बोलने घूमने आदि के प्रति उदासीनता, भूख की कमी, थकावट, कब्ज़, गैस बनना, काम दौर्बल्य, लगातार शरीर या सिर में दर्द एवं भारीपन, पैरों में एवं माथे पर पसीना आदि।

उपचार : इस रोग की चिकित्सा के लिए आवश्यक हे रोगी अपनी जीवन शैली में बदलाव लाये जो मुख्यत: इस प्रकार संभव है:-

(1) रोगी नशीली दवाओं का प्रयोग बंद कर दे क्योंकि नशा मस्तिष्क रसायन का स्तर कम करता है।

(2) प्रतिदिन योग, व्यायाम, ध्यान, प्रेक्षा, प्राणायाम, प्रात: भ्रमण आदि करें। इससे इंडोफिस का स्तर बढ़ता है और व्यक्ति अपने आप को मानसिक दृष्टि से अधिक स्वस्थ अनुभव करने लगता है।

(3) परिवार के सदस्य उसके मानसिक बल को बढ़ाकर नकारात्मक सोच को सकारात्मक सोच में परिणित करने का हर संभव मनोवैज्ञानिक प्रयत्न करें, जिससे रोगी की हीन-भावना दूर हो और मनोबल बढ़ सके। उन सब कारणों को दूर करें, जिससे व्यक्ति अवसाद ग्रस्त रहता है।

(4) खान-पान में बदलाव , पौष्टिक एवं संतुलित आहार, रेशायुक्त भोजन, ताजे फल-सब्जियों का यथोचित मात्रा में उपयोग।

(5) वर्तमान में जीने का प्रयत्न करें। यह सोच विकसित करे कि कर्म करना हमारा कर्त्तव्य है, फल हमारे हाथ मे नहीं है। असफलता ही सफलता की कुंजी है। अत: फल की चिंता तथा असफलता से निराश न हों।

(6) दृष्टिकोण आशावादी सकरात्मक बनायें। सदैव सोचें कि संपूर्ण व्यक्ति वाला कोई भी व्यक्ति नहीं है। सुख-दुःख, उतार-चढ़ाव, लाभ-हानि, यश-अपयश तो आते जाते रहते हैं।

अंत में जीवन अपने आप में एक चुनौती है। समस्याएं, अभाव एवं कष्ट हर एक व्यक्ति के जीवन में आते हैं। जीवन में बाधाओं का सामना करने वाले व्यक्ति ही आगे बढ़ते हैं। अतः सकरात्मक सोच विकसित व्यक्ति को मानसिक अवसाद (डिप्रेशन) से बचा सकती है। यथासंभव समुचित उपचार का सहारा भी लें परन्तु वह स्थायी तौर पर समाधान नहीं है। स्थायी समाधान आशावादी बनकर पूरे आत्मविश्वास एवं मनोबल (Will Power) से कार्य सम्पन्न करने से ही संभव है।

यही अवसाद का मूलभूत उपचार है। ❑

बुढ़ापा वरदान कैसे बने?

जीवन की तीन मुख्य अवस्थाएं हैं - बचपन, यौवन तथा बुढ़ापा, यानी वृद्धावस्था। सामान्यतः बचपन और युवावस्था को तो व्यक्ति अच्छे ढंग से जी लेता है, परंतु वृद्धावस्था कई बार अभिशाप अथवा बोझ सी बन जाती है। वृद्धावस्था सानंद बीत सके, इसके लिए कुछ महत्वपूर्ण बिंदुओं पर विचार करना आवश्यक है। आइए देखें, वृद्धों के कर्त्तव्य, परिवार के सदस्यो के वृद्धो के प्रति कर्त्तव्य तथा सामाजिक संस्थाओं के वृद्धों के प्रति कर्त्तव्य क्या है?

वृद्धों के कर्त्तव्य

1. समय के बदलते परिवेश में अपनी मानसिकता को यथाशक्ति बदलने की चेष्टा करें। समय की मांग को ध्यान मे रखकर अपनी इच्छाओं का एवं रूढ़िवादिता का दमन करें।

2. स्नेह एवं प्यार के साथ सभी के साथ वार्तालाप करें। निंदा भूलकर भी न करें।

3. जो कार्य स्वयं कर सकते है, उन्हें स्वयं ही करने की चेष्टा करें।

4. खान-पान एवं अपने स्वास्थ्य की देखभाल स्वयं करे, समय पर सोना, जागना, स्नान करना, सीमित तथा संतुलित भोजन, व्यायाम, योग आदि गुणकारी बातों को अवश्य अपनायें।

5. यदि संभव हो तो घर के छोटे-मोटे कार्यो में हाथ बटायें, जैसे- बच्चों को स्कूल छोड़ना, बाज़ार से सब्जी लाना, दूध लाना, छोटे बच्चों को पढ़ाना-लिखाना, उन्हें घुमाने ले जाना, ज्ञानवर्धक कहानियां, किस्से, पहेलियां, कविताएं सुनाना आदि।

6. अपनी जीवन संग्रह की उपलब्धियो को परिवारजनों में बांटना एवं अपने अनुभवों के ज्ञान का परिवार में किसी भी रूप में उपयोग करने में

परिवारजनों में संतुष्टि की भावना पैदा करना।

7. कम से कम समस्याएं पैदा करना एवं धन के अपव्यय को रोकना।

8. अनावश्यक ज़रूरतों को बढ़ावा न देना, अपने परिवार के सदस्यों को अपने आचरण से इतना प्रभावित कर दें कि हर सदस्य आपसे प्यार करे।

9. समय विताने के लिए अपनी हॉबी, कन्सलटैन्सी या शिक्षण संस्थान खोल लेना, ट्यूशन पर अथवा निःशुल्क बच्चों को पढ़ाना, बागबानी करना, डेयरी फार्म खोलना आदि। लेखन का कार्य, समाज-सेवा के कार्य करना इत्यादि।

10. धार्मिक पुस्तकें पढ़े। हमउम्र साथियों के साथ घूमने जाए, धर्मस्थलों का भ्रमण करें, मनोरंजन के लिए टी.वी सिनेमा देखे तथा रेडियो से संगीत एवं समाचारों को सुनें, अपना सगठन बनायें, विभिन्न विषयो पर चर्चा कर बच्चों का ज्ञानवर्धन करें तथा एकाकीपन से मुक्ति पायें।

11. परिवार के मुखिया के रूप में सलाहकार की भूमिका निभाएं। परिवार के कार्यो में निर्णय लेते समय अन्य पारिवारिक सदस्यो की राय भी ले तथा अपना पक्ष भी उनके समक्ष रखें। हठधर्मिता, क्रोध का त्याग करे।

12. बुढ़ापे के लिए बचाई रकम (राशि)सुरक्षित अपने पास ही रखें। ज़मीन जायदाद, गहने जीवित रहते किसी को न दें। कानूनी जानकारी भी हासिल करते रहे। वसीयत यदि आवश्यक समझें तो कर सकते है।

परिवार के सदस्यों के कर्त्तव्य

संतान को भी अपना दायित्व यथासंभव पूर्ण करना चाहिए, जिससे परिवार में सुख-शांति, खुशी तथा आनद का वातावरण बना रहे। अगर वे निम्न बातों को अपनाये तो हमारे बुजुर्ग हमेशा खुश रह सकते है।

1. अपने बुर्जर्गो को सम्मान दें एवं उनकी भावनाओ का आदर करें। उनके भोजन, शयन, कपड़े आदि का पूरा ध्यान रखे।

3. समय मिलने पर परिवार के सदस्य बुजुर्गो से मिलते रहे एवं उन्हें पारिवारिक समाचार एवं सबकी राजी-खुशी की सूचना देते रहे, जैसे- त्योहारों को बुजुर्गो के साथ मिलकर मनाना, बच्चों के जन्मदिन अथवा शादी की सालगिरह को बुजुर्गो के साथ मनाना तथा उनका आशीर्वाद लेना।

4. बीमार होने पर उनकी समुचित चिकित्सा करायें एवं उनके स्वास्थ्य

का ध्यान रखें।

5. मन से की गई थोड़ी सेवा भी उनके लिए अधिक है। अतः उनके आशीर्वाद के फल से न चूकें।

6. आपके किए हुए व्यवहार का अनुकरण छोटे बच्चे भी करेंगे, अतः परोक्ष या प्रत्यक्ष में व्यवहार को अनुकरणीय बनायें।

7. स्मरण रहे कि मातृ एवं पितृ ऋण के आप ऋणी हैं, उनकी यथासंभव सेवा से ही ऋणमुक्त हो सकते हैं।

8. कानूनी तौर पर भी आप अपने उपेक्षित एवं निराश्रित बुजुर्गों के प्रति बंधे हुए हैं। सी. आर. पी. एस. के अंतर्गत आपको एक निर्धारित राशि प्रति माह बुजुर्गों को निर्वाह हेतु देनी पड़ सकती है।

सामाजिक संस्थाओं के कर्त्तव्य

1. सामाजिक संस्थाएं दिखावे का त्याग कर मूल रूप से कार्य करें, जैसे- बुजुर्गों को गोद लेना, घर-घर जाकर उनकी आवश्यकताएं पूरी करना, बुजुर्गों से बराबर मिलते रहें तो वृद्धों की समस्याएं ही नही रहेंगी।

2. वृद्ध-आश्रमों को मात्र आर्थिक उपलब्धि का साधन न बनाएं अर्थात वृद्धो के हितार्थ सेवा करें।

3. सरकार से जो भी सुविधाएं वृद्धो का प्राप्त होती हैं, वे वृद्धजनों तक पहुंचाएं जैसे- पैंशन, चिकित्सा या यात्रा में रियायत इत्यादि।

4. सामाजिक संस्थाएं वृद्धों के हितार्थ समय-समय पर निःशुल्क सेवा कैम्प (शिविर) लगायें, जैसे- नेत्र चिकित्सा, दंत चिकित्सा, मधुमेह जांच, पक्षाघात की (ECG)जांच, टी.बी., कैंसर जैसे रोगियों के हितार्थ शिविर आदि। इन शिविरों में निःशुल्क दवाई वितरण, चश्मे वितरण आदि की भी व्यवस्था की जा सकती है। □

तृतीय खण्ड

समय-प्रबंधन की अवधारणा महत्व तथा नियोजन

कहावत है- 'बीता समय वापिस नहीं आता।' यह शत-प्रतिशत सही भी है। समय का सही उपयोग ही व्यक्ति के लिए महत्वपूर्ण है। समय का कोई *विकल्प नही है। समय एक सीमित साधन होने के साथ-साथ असामान्य साधन* भी है। किसी भी संस्था मे पूंजी की कमी पूरी की जा सकती है, मानव श्रम की कमी पूरी की जा सकती है परंतु समय न तो उधार लिया जा सकता है न ही खरीदा जा सकता है। अन्य साधनों की मांग की तरह समय की कितनी मांग क्यों न हो, आपूर्ति मे वृद्धि नहीं की जा सकती। अतः समय की आपूर्ति मे लचीलापन नहीं है। *समय एक ऐसे गंजे आदमी के समान होता है, जिसके* सिर पर बाल तो है, परंतु पीछे की तरफ एक भी बाल नहीं है। अतः यदि समय को पकड़ना है तो आगे से यानी पूर्व निर्धारित योजनानुसार ही पकड़ना होगा। कहावत है- 'Catch the time from its forehead.' सच तो यह है कि समय वह 'धन' है, जो 'अनमोल रत्न' की श्रेणी मे आता है। इससे समय प्रबधन की अवधारणा का महत्व और भी बढ़ जाता है। समय का सही उपयोग, नियोजन, समन्वयन तथा कुशलता से सही समय पर सही कार्य निष्पादन आज की आवश्यकता तथा मानव-जीवन की अनिवार्यता बन गया है।

अक्सर सुनने में आता है- 'समय नही है।' कारण है आदमी का अत्यधिक व्यस्त होना। इस भाग-दौड़ की ज़िंदगी में समय निकालने (बचाने) हेतु भी समय-प्रबंधन परमावश्यक हो गया है।

समय की बचत करने मे निम्न तीन उपाय सहायक हो सकते है:-

1. **समय की बर्बादी/छीजत पर रोक/नियंत्रण :** हमारे अनमोल समय को बर्बाद करने मे *मुख्यतः* निम्न कारण हो सकते है -

(1) प्राथमिकताओं/उद्देश्यों की अस्पष्टता अथवा देरी से नियोजन।
(2) कार्यों का अप्रभावी प्रत्यायोजन (डेलीगेशन)।
(3) अव्यवस्थित कार्य।
(4) निर्णय लेने मे कमी होना।
(5) आपात-कार्य।
(6) टेलीफोन/मोबाईल हस्तक्षेप।
(7) अनियोजित बैठकें।
(8) मिलने हेतु आने वाले (Visitors) अथवा अतिथिगण।
(9) एक समय मे एक से अधिक कार्य हाथ में लेना।
(10) अव्यवस्थित कार्य-व्यवस्था।

यदि उक्त बातों का समुचित ध्यान रखा जाये तो समय की बर्बादी रोकी जा सकती है।

2. समय पर स्वयं का नियंत्रण : समय पर नियत्रंण हेतु हमें समय को तीन वर्गों में बांटना होगा -

(1) हमारे द्वारा नियंत्रित समय।
(2) अन्य द्वारा अपेक्षित समय।
(3) अनपेक्षित कार्य।

यदि हम सूक्ष्मता से प्रतिदिन किए जाने वाले कार्यो का विश्लेषण तथा अध्ययन करें तो पाएंगे कि नियंत्रण योग्य समय हमारे पास अधिक होगा, यदि पूर्व नियोजित ढ़ग से कार्यो का निष्पादन किया जाये। दूसरे व्यक्तियों द्वारा अपेक्षित समय को भी 'हस्तक्षेप' करके कम कर नियंत्रित किया जा सकता है। अनपेक्षित कार्यो का निष्पादन ज्यादातर स्वयं द्वारा ही किया जाता है। अत: इस हेतु स्वविवेक तथा ध्यान रखने की आवश्यकता है।

कार्यो में समय का प्रबंधन : इस प्रकार किया जा सकता है -

1. डाक द्वारा प्राप्त पत्रों का शीघ्र निपटारा कर समय तथा श्रम दोनों ही बचाये जा सकते है। इस संबंध मे TRAF पद्धति का उपयोग किया जा सकता है, जो इस प्रकार है -

T = Toss it : कुछ पत्र ऐसे होते है, जो संस्था के कार्यो से संबंधित नहीं होते हैं अथवा जिनका रिकार्ड रखना आवश्यक नहीं होता है। पत्रानुसार संदेश पढ़कर नोट करके पत्र नष्ट करना।

R=Refer it : कुछ पत्र ऐसे होते है, जो अन्य कर्मचारियों व आवश्यक कार्यवाही हेतु देने होते हैं। ऐसे पत्रों को पढ़कर संबंधित अधिकार कर्मचारी का नाम लिखकर (मार्क करके) एक फोल्डर में रख लिया जाये ए एक साथ सभी पत्र सबंधित व्यक्तियो को दे दिए जायें।

A=Action can it : कुछ पत्रों पर स्वयं कार्यवाही करनी होती है। उन स्वयं के प्लानर में समय पर आवश्यक कार्यवाही हेतु नोट कर लें।

F=File it : कुछ पत्र/परिपत्र ऐसे होते हैं, जिन्हें केवल फाईल करन होता है।

- बैठके अल्प समय के लिए ही की जायें तथा निर्धारित समय मे ही समाप्त कर ली जायें। ऐसा प्रयास किया जाना चाहिए।
- एक बैठक के तुरंत बाद दूसरी बैठक जब तक अतिआवश्यक न हो, न रखी जाए।
- बैठक के कार्यवृत विस्तार से लिखे जाये ताकि कार्यरूप देने में सुगमता रहे।
- प्रधान को टेलीफोन/मोबाईल सेवाओ पर समुचित नियंत्रण रखना चाहिए। ज्यादा लंबी तथा अनावश्यक वार्ता पर नियंत्रण धन तथा समय की बचत में सहायक होगा।
- टेलीफोन पर वार्ता से पूर्व वार्ता का विवरण नोट करके बिदुवार वार्ता की जाये।
- कुछ संदेश प्रेषित करने में फैक्स/एस.एम.एस का उपयोग करना समय की बचत मे सहायक साबित होगा।
- इंटरकाम का उपयोग आवश्यक निर्देश या संदेश हेतु ही करें। जिस व्यक्ति को टेलिफोन किया जाये, यदि वह उपलब्ध न हो, तो अनावश्यक पूछताछ अथवा बातो मे समय तथा धन का दुरुपयोग न करें, संदेश का विवरण उपलब्ध व्यक्ति को नाम/पद पूछकर छोड़ दें अथवा पुनः कुछ समय उपरांत संपर्क करें या उन्हे सपर्क करने को कहे।
- स्वचालित डायलिंग पद्वति द्वारा समय बचाया जा सकता है।
- अपने कार्यालय की व्यवस्था, टेबल-दराज [illegible] व्यवस्थित रखें। अक्सर कोई फाईल, पेपर, पेन, सहा[illegible] हम काफी समय बर्बाद कर देते हैं। कारण [illegible]

हम रखकर भूल जाते हैं। अतः प्रत्येक वस्तु हेतु स्थान नियत होना चाहिए तथा सभी कर्मचारियों/अधिकारियों आदि में नियत स्थान पर वस्तुओं को रखने की आदत होनी चाहिए। इससे समय की वचत होगी तथा सुविधा से कार्य अच्छा होगा।

- अपने कार्य में कम हस्तक्षेप करने दें तथा कार्य के समय वाधा से वचें। संस्था/कार्यालय में प्रकाश, हवा, पानी आदि की समुचित व्यवस्था का ध्यान रखें। इससे कार्यकुशलता कम नहीं होगी तथा समय की वचत भी होगी।
- पढ़ने की गति को वढ़ायें।
- संदर्भ सामग्री (आवश्यक स्टेशनरी) अपनी सहज पहुच में रखें ताकि वार-वार उठना न पड़े तथा समय वर्वाद न हो।
- मनोरंजन, खेल-कूद का अपना महत्व है, इससे ऊर्जा का पुनः सृजन होता है। अतः मनोरंजन का भी समय निर्धारित करें।
- 'काल करे सो आज कर, आज करे सो अव।' की उक्ति का ध्यान रखें। अर्थात् एक दिन पूर्व ही अगले दिन के कार्यो की योजना वना लें।
- अपने प्रतिदिन के कार्यों में समयवद्धता रखें तथा तनाव-मुक्त रहें।
- अपना संदेश अथवा संवाद स्पष्ट, समझने योग्य तथा प्रभावी रखना चाहिए ताकि दुहराना न पड़े।
- स्वयं में ध्यान से सुनने तथा समझने की आदत तथा क्षमता विकसित करनी चाहिए, जिससे किसी तथ्य को समझने में देरी न हो।
- अपना दृष्टिकोण विकसित रखें तथा समस्याओं को व्यवस्थित ढंग से सुलझायें।
- अपने अधीनस्थों को कार्य का वितरण उनकी कार्यकुशलता, योग्यता एवं क्षमता को ध्यान में रखते हुए संवंधित व्यक्ति से परामर्श करके करें तथा पर्याप्त प्रत्यायोजन (डेलीगेशन) के सिद्धांत को अपनायें।
- स्वप्रेरित होकर कार्य करें।
- जटिल कार्यों में अपने से उच्च एवं अनुभवी व्यक्तियो से परामर्श कर ले तथा वॉस से अनुमति प्राप्त कर ले, जिससे वाद में कोई वाधा उत्पन्न न हो सके।
- व्यय किए गये समय की समीक्षा करें।
- अनावश्यक मुलाकातों/पार्टियों/भोजों को टाले तथा मुलाकातों में

अनावश्यक चाय, कॉफी इत्यादि की औपचारिकता पर समय बर्बाद न करें।

◆ अपने कार्यों को तीन श्रेणियों में बाटें - (1) महत्वपूर्ण कार्य (2) महत्वपूर्ण एवं आवश्यक नहीं (3) आवश्यक परंतु महत्वपूर्ण नहीं।

महत्वपूर्ण कार्यों को प्राथमिकता पर निपटाये। गैर-प्राथमिकता अथवा कम प्राथमिकता के कार्यो में समय का उपयोग कम करें। जो कार्य डाक अथवा दूसरे व्यक्ति से करवाया जा सके, उस कार्य को स्वयं न करके उपलब्ध साधन/माध्यम से करवायें, जिससे समय तथा परिश्रम में बचत होगी।

◆ प्रत्येक कार्य के लिए लक्ष्य का निर्धारण करें।

◆ एक समय मे एक ही कार्य करने की आदत विकसित करे, जिससे किए गये कार्य से संतोष तथा खुशी प्राप्त हो तथा त्रुटि की संभावना नगण्य हो। दूसरा कार्य तभी शुरू करें जब पहला कार्य पूर्ण हो जाये। इससे समय की बचत होगी तथा किया गया कार्य विश्वसनीय होगा।

◆ अपने दैनिक कार्यो (जैसे शौचादि, सैर, स्नान करना, भोजन करना, पूजा-पाठ करना, सोना, मनोरंजन, व्ययाम करना आदि) के समय का बजट बनाये, जो एक दिन पूर्व ही बना लें, इससे समय की बचत होगी, कार्य करने में नियमिता तथा सुगमता होगी तथा कोई कार्य अधूरा नहीं रहेगा अथवा छूटेगा नही।

◆ अत्यधिक जटिल कार्यो को कई भागों में विभक्त करके सम्पन्न करें।

◆ निजी(घरेलू) तथा कार्यालय के कार्यो में समय का सही विभाजन करे।

◆ निजी कार्यो को भी महत्व दें, जिससे पारिवारिक सुख-शांति बनी रहे तथा किसी भी वस्तु का अभाव अनुभव न हो।

◆ कार्य के साथ-साथ अपने स्वास्थ्य का ध्यान रखें। आराम के लिए पर्याप्त समय निकालें।

◆ अपने सामाजिक कार्यो जैसे- शादी, जन्मदिन, सालगिरह आदि में शामिल होना, किसी की मृत्यु/असफलता/दुर्घटना होने पर सहानुभूति व्यक्त करने जाना अथवा अन्य सामाजिक हित के कार्यो हेतु समय का निर्धारण करें। व्यक्ति एक सामाजिक प्राणी है, वह समाज से अलग नहीं रह सकता। यथासंभव रविवार अथवा छुट्टी (अवकाश) का दिन चुनें, जिससे कार्य में

असुविधा न हो।

समय-प्रबंधन के उक्त वर्णित तरीके मात्र उदाहरण मात्र हैं। इसके अतिरिक्त भी समय की बचत के उपाय हो सकते है। समय-प्रबंधन से समय की बचत कर हम संस्था के विकास में सहायक बन सकते हैं। समय के प्रबंधन से हमें आत्मिक सुख तथा आनंद की भी अनुभूति होती है, जो हमारे जीवन में सर्वोपरि एवं महत्वपूर्ण है। ❑

वायु प्रदूषण और हमारा स्वास्थ्य

आदिकाल से ही हमारे देश में स्वच्छ वायु एवं स्वच्छ जल का महत्व ऋषि-मुनियों द्वारा बताया जाता रहा है। प्राचीनकाल में ही वायु को प्रदूषण-मुक्त करने के लिए विभिन्न उपाय उपयोग में लाये जाते रहे हैं, जैसे- कपूर, चंदन, घी, अगरबती, धूप, केसर, लोबाण, केवड़ा, पुष्प इत्यादि का उपयोग देव आराधना में अष्टगंध रूप में किया जाता है। वायु को वर्षा तथा अन्न का कारण भी मानते हैं। अतः वायु की देव-रूप में पूजा भी की जाती है। वायु को पवन भी कहा जाता है तथा पवनपुत्र हनुमान जी की भी हमारे देश में पूजा कलयुगी अवतार के रूप में की जाती है।

विकास, विशेषकर औद्योगिक विकास ने वायु-प्रदूषण में बेहताशा वृद्धि कर दी है, रही, सही-कसर ऑटो-वाहनों, जैसे- दुपहिया, तिपहिया, जीप, ट्रक, कार, ट्रैक्टर, डिलीवरी वाहन आदि की संख्या में निरन्तर वृद्धि होने ने पूरी कर दी है। आजकल कारखाने, मोटर-वाहन, भट्टियां, चूल्हे, ईंटो के भट्टे निरन्तर धुआं उगल रहे है। दूसरी ओर ईंधन, आवास तथा फर्नीचर आदि के लिए वनों (वृक्षो) की कटाई निरन्तर तथा अनवरत रूप से जारी है। वायुमंडल का दूषित होना हम सब के लिए एक चिंता का विषय है।

हम सभी जानते है कि श्वांस लेने मे हमें ऑक्सीजन-वायु की ज़रूरत पड़ती है। हवा में प्रदूषण के कारण अनेक बीमारियां जैसे- दमा, कैसर, खांसी, अस्थमा, तपेदिक, अंधापन, बहरापन, टी.वी. इत्यादि होने की संभावना काफी बढ़ जाती है। इससे मनुष्य ही नही अपितु वनस्पति भी काफी प्रभावित होती है। वायुमंडल में गैसों तथा धुएं की मात्रा ज्यादा बढ़ जाने से तापमान में भी वृद्धि हो जाती है तथा सांस तक लेना कठिन हो जाता है। हम जानते है कि धुएं में कार्बन, कार्बनडाइ ऑक्साइड, नाइट्रोजन, ऑक्साइड, मोनो ऑक्साइड, सल्फर डाईऑक्साइड जैसी ज़हरीली एवं घातक गैसे होती है, जिससे दम घुटने

लगता है। एक कार को 960कि.मी. तक सफर करने में जितनी ऑक्सीजन चाहिए उतनी ऑक्सीजन एक व्यक्ति एक वर्ष तक लेता है। अतः स्पष्ट है कि हमारे लिए ऑक्सीजन हवा अथवा स्वच्छ तथा निरोगी हवा की कमी होती जा रही है, जो हम सबका दुर्भाग्य है तथा चिंता का विषय है, जिसका निदान खोजना अनिवार्य है। विकास की अंधाधुध दौड़ में हम अपना विनाश कर रहे हैं। स्वच्छ एवं जीवनदायिनी हवा में ज़हर घोलकर हम प्राणी को पनपने से रोक रहे हैं तथा विभिन्न बीमारियों को न्योता दे रहे हैं। प्राकृतिक-संपदा के घने जगंल कम होते जा रहे हैं, जिसके कारण प्राकृतिक औषधियों के उपयोग में आने वाली जड़ी-बूटियां भी लुप्त होने को हैं। जनसंख्या में निरन्तर वृद्धि हो रही है, जिससे हमें अधिक ऑक्सीजन हवा की ज़रूरत पड़ेगी, जिसकी मात्रा निरन्तर कम हो रही है।

अतः आज की परिस्थितियों को देखते हुए वृक्षारोपण करना परमावश्यक हो गया है। हम सबका कर्त्तव्य है कि हम वृक्षारोपण में अपना योगदान कम से एक वृक्ष लगाकर दे, जिसमें तुलसी, पीपल, नीम, फोग, टाली, सफेदा आदि के पेड़ों को प्राथमिकता दें। रेगिस्तानी अथवा कम वर्षा वाले इलाकों में कनेर, कीकर, सरेस आदि के पौधे लगाये जा सकते हैं।

वृक्षों से लाभ ये है -

(1) वृक्षों के कारण बरसात होने में मदद मिलती है।

(2) वृक्ष हमें तथा पशुओं को स्वच्छ ऑक्सीजन हवा तथा छाया प्रदान करते हैं, जो हमारा जीवन आधार है।

(3) वृक्षों से नदियो तथा नहरों के बहाव को नियंत्रित किया जा सकता है तथा मोड़ा भी जा सकता है। मिट्टी का कटाव पानी के तेज प्रवाह से होता है, जिसे वृक्ष रोकने मे सहायक बनते हैं। अतः वृक्षों से नदियों तथा नहरों को सुरक्षा तथा संरक्षण प्राप्त है। राजस्थान की भाखड़ा नहर, जो महाराजा गंगासिंह जी ने बनवाई थी, वह कच्ची बनी हुई है, जो वृक्षों के कारण लगभग 100 वर्षों से बह रही है तथा एक सफल प्रयास साबित हुआ है। श्रीगंगानगर जिले के विकास मे इस नहर का विशेष योगदान रहा है। श्रीगंगानगर जिला राजस्थान का अन्नदाता इसी नहर की वजह से बन सका है।

(4) वृक्षों से पशुओं को हरा चारा मिलता है, जैसे- बकरी के लिए कीकर, ऊंट के लिए नीम तथा घोड़े के लिए घास आदि।

प्रदूषण तथा हमारा स्वास्थ्य

आज के भाग-दौड़ तथा भीड़-भाड़ भरे नगरीय व महानगरीय जीवन में प्रदूषण रहित शुद्ध वायु का उपलब्ध होना काफी कठिन है, आम आदमी का प्रदूषण से बचना असंभव सा प्रतीत होता है। आज प्रदूषण के कारण अनेक प्रकार के रोगों से लोग ग्रसित होकर मृत्यु तक को प्राप्त कर रहे हैं। कई बीमारियां नई-नई किस्म की देखने तथा सुनने में आ रही हैं, जो ला-ईलाज होती जा रही हैं। लोग काफी संख्या में इलाज के लिए चिकित्सकों की शरण में जाने लगे हैं तथा अनवरत दवा-सेवन करने पर मजबूर हैं परंतु समस्या का स्थायी हल नहीं निकल पा रहा है। रक्तचाप, उच्च मधुमेह, हृदय रोग, टी. बी, दमा, कैंसर, हृदयघात जैसे जटिल तथा भयानक रोग तथा पेट संबंधी रोग शुद्ध वायु में घूमने से काफी कुछ नियंत्रित हो सकते हैं। अतः इलाज के साथ-साथ हमें प्रकृति से नाता जोड़ना चाहिए जो कि निःशुल्क उपलब्ध है, तभी वास्तव में हमें लाभ होगा। योगाभ्यास एवं व्यायाम से भी प्रदूषण के असर को नियंत्रित किया जा सकता है। इंसान को कभी भी हताश/निराश नहीं होना चाहिए तथा सुखद जीवन एवं दीर्घायु के लिए नियमित रूप से घूमना (सैर पर जाना) चाहिए।

प्रदूषण चार प्रकार का होता है – (1) वायु प्रदूषण (2) जल प्रदूषण, (3) ध्वनि प्रदूषण (4) वाणी प्रदूषण (अपशब्दों/निम्न भाषा का उपयोग अथवा चिल्लाकर बातचीत करना)

प्रदूषण मुक्त प्रातः की सैर

यह सही है कि महानगरो में शुद्ध हवा मिल पाना एक समस्या है। महानगरों में शुद्ध हवा के लिए काफी दूर-दूर तक बाहर जाना पड़ता है, जो हर व्यक्ति के लिए संभव नहीं हो सकता। अतः कुछ लोग अपने वाहनों पर

(5) वृक्षों से हरियाली तथा सुदंरता में वृद्धि होती है। फल-फूलों से तन-मन आनंदित होता है तथा आर्थिक लाभ भी मिलता है। पौधो से हमे तरकारी जैसे आलू, प्याज, तोरी, भिंडी, टमाटर, बैगन, खरबूजा, मतीरा इत्यादि भी प्राप्त होते है।

(6) वृक्षों से हमें अनेक उपयोगी तथा दुर्लभ जड़ी-बूटियां भी मिलती है, जो विभिन्न औषधियों के निर्माण में काम आती हैं, जैसे- आंवला, मैथी, अदरक इत्यादि।

हमारे नगर बीकानेर में भी स्वास्थ्य रक्षा के प्रति जनता जागरूक हुई है *तथा विभिन्न पार्को का निर्माण एवं विकास स्वय-सेवी संस्थाओं तथा मोहल्ला* कमेटियों ने अपने हाथों में लिया है, जो एक सराहनीय कदम है।

हमारे नगर बीकानेर मे कोटगेट, स्टेशन रोड, रानी बाज़ार इत्यादि इलाके व्यस्ततम होने के कारण वहां का प्रदूषण अत्यधिक पाया गया है, जिसके नियंत्रण के लिए घर-घर में गमलों मे पौधों को लगाना चाहिए, जिससे सुदंरता, सजावट, हरियाली आदि बढ़ेगी तथा प्रदूषण कम होने मे सहायता मिलेगी। ❑

प्रदूषण तथा हमारा स्वास्थ्य

आज के भाग-दौड़ तथा भीड़-भाड़ भरे नगरीय व महानगरीय जीवन में प्रदूषण रहित शुद्ध वायु का उपलब्ध होना काफी कठिन है, आम आदमी का प्रदूषण से बचना असंभव सा प्रतीत होता है। आज प्रदूषण के कारण अनेक प्रकार के रोगों से लोग ग्रसित होकर मृत्यु तक को प्राप्त कर रहे हैं। कई बीमारियां नई-नई किस्म की देखने तथा सुनने में आ रही है, जो ला-ईलाज होती जा रही हैं। लोग काफी संख्या में इलाज के लिए चिकित्सकों की शरण में जाने लगे हैं तथा अनवरत दवा-सेवन करने पर मजबूर हैं परंतु समस्या का स्थायी हल नहीं निकल पा रहा है। रक्तचाप, उच्च मधुमेह, हृदय रोग, टी. बी., दमा, कैंसर, हृदयघात जैसे जटिल तथा भयानक रोग तथा पेट संबंधी रोग शुद्ध वायु में घूमने से काफी कुछ नियंत्रित हो सकते हैं। अतः इलाज के साथ-साथ हमें प्रकृति से नाता जोड़ना चाहिए जो कि निःशुल्क उपलब्ध है, तभी वास्तव में हमें लाभ होगा। योगाभ्यास एवं व्यायाम से भी प्रदूषण के असर को नियंत्रित किया जा सकता है। इंसान को कभी भी हताश/निराश नहीं होना चाहिए तथा सुखद जीवन एवं दीर्घायु के लिए नियमित रूप से घूमना (सैर पर जाना) चाहिए।

प्रदूषण चार प्रकार का होता है - (1) वायु प्रदूषण (2) जल प्रदूषण, (3) ध्वनि प्रदूषण (4) वाणी प्रदूषण (अपशब्दों/निम्न भाषा का उपयोग अथवा चिल्लाकर बातचीत करना)

प्रदूषण मुक्त प्रातः की सैर

यह सही है कि महानगरों में शुद्ध हवा मिल पाना एक समस्या है। महानगरों में शुद्ध हवा के लिए काफी दूर-दूर तक बाहर जाना पड़ता है, जो हर व्यक्ति के लिए संभव नहीं हो सकता। अतः कुछ लोग अपने वाहनों पर

शहर से बाहर जाते है। वाहन एक जगह खड़ी करके खुली तथा शुद्ध हवा मे टहलते हैं, फिर लौटकर वाहनों से ही अपने-अपने घर पर आते हैं, यह उपाय स्वास्थ्य के लिए अच्छी औषधि है। हमारे शहर बीकानेर में भी वरिष्ठ नागरिक भ्रमण-पथ बना हुआ है, जहां काफी संख्या में लोग प्रातः-सायं भ्रमण के लिए आते हैं।

वास्तव में शुद्ध हवा पाने के लिए हमें पुराने रास्ते तलाशने होंगे, जैसे-ब्रह्म मुहूर्त में उठना। बड़े सुबह अथवा तड़के (प्रातः 4 से 5 बजे) उठने से भरपूर शुद्ध वायु सहज रूप में उपलब्ध होगी, जो प्रदूषण रहित तथा स्वास्थ्यवर्द्धक होगी। आप खुली हवा मे कम से कम 2-3 किलोमीटर प्रतिदिन घूमिए। इसके लिए आप किसी पार्क, स्कूल, महाविद्यालय, खेल का मैदान अथवा स्टेडियम आदि का चयन कर सकते हैं या फिर शहर के बाहर कोई खुला इलाका अथवा भ्रमण-पथ, खेत-क्यारी, जो कृषि-भूमि मे हो तथा जहां पर हरियाली हो, का उपयोग भी किया जा सकता है। वृद्धावस्था के लोगो को घर पर की छत पर घूमने से भी शुद्ध तथा स्वच्छ वायु प्राप्त होगी तथा प्रदूषण से बचाव होगा। इससे दोहरा फायदा होगा- एक खुली शुद्ध वायु का सेवन तथा दूसरा व्यायाम।

घूमने के साथ-साथ गुनगुनाएं भी

घूमने के साथ-साथ आप यदि थोड़ा हंसें, मुस्कराएं, गुनगनाएं तो सोने मे सुहागा होगा। हंसने से शुद्ध हवा का आवागमन ज्यादा होगा, फेफड़ो को लाभ होगा, हंसना अपने आप में एक उपचार है। अभी हाल के शोधो के अनुसार ताली बजाना भी शारीरिक स्वास्थ्य के लिए अत्यंत सरल व प्रभावकारी साधन है। कहने का तात्पर्य है कि प्रदूषण रहित शुद्ध हवा में आप घूमे, हंसे गुनगुनाए, ताली बजाए, व्यायाम करें तो निश्चित रूप से आपको लाभ होगा, इससे रोगों को दूर भगाने मे पक्के तौर पर सहायता मिलेगी, मन-मस्तिष्क चुस्त-दुरुस्त होगा, रक्त नलिकाएं शुद्ध रक्त से पूर्ण होगी तथा उनमे रक्त प्रवाह नियमित होगा, फेफड़ो को ऑक्सीजन हवा पर्याप्त मात्रा मे उपलब्ध होगी तथा नई ताज़गी तथा तन्दरुस्ती का अहसास होगा।

जो लोग बाहर घूमने नही जा सकते, उन्हे कम से कम सप्ताह मे एक दिन अवश्य घूमना चाहिए, बिल्कुल न घूमने से कुछ (जितना हो सके) घूमना

अच्छा है। पुराने समय में वन-यात्रा, नगर-परिक्रमा, प्रभात-फेरी व धार्मिक यात्रा का रिवाज़ था, जो तड़के सुबह शुरू हो जाती थी तथा पैदल ही होती थी। ये रिवाज़ स्वास्थ्य-रक्षण की दृष्टि से काफी महत्वपूर्ण हैं, जिनको हमे अपनाना होगा। वन-यात्रा, वन-भोजन भले ही पिकनिक, दावत, गोठ, पार्टी, समारोह-स्नेह मिलन आदि के रूप में हो, का आयोजन करना चाहिए। हमारे शहर बीकानेर में पुनराधाम यात्रा, सालासर-धाम यात्रा, बाबा रामदेव जी धाम यात्रा आदि पैदल-यात्री संघों द्वारा की जाती है, जो शहर की विशेषता है। वर्षभर में एक बार मात्र इसे करने से भी स्वास्थ्य लाभ मिलेगा तथा भगवान के दर्शनों का लाभ भी मिलेगा।

डॉक्टर से बड़ी प्रकृति

वृक्ष हमारे सच्चे हितैषी है, उनके सानिध्य में कुछ देर रहना हर दृष्टि से अच्छा तथा फायदेमंद है। वृक्ष प्रदूषण से लड़ने में हमारी सबसे ज्यादा सहायता करते है। प्राचीनकाल मे तो मानव का आधा हिस्सा वनो में, प्रकृति की गोद में व्यतीत होता था। अध्ययन-काल तथा संन्यास-काल वनो में ही बीतता था। भगवान श्रीराम ने बनवास के समय प्रकृति की शोभा (नदियों, बादलों, आकाश, वर्षा, झरनों, वन्य-जीवों आदि) का जो वर्णन रामायण में किया है, उसे कौन नहीं जानता है। अतः प्रदूषण रहित प्रकृति में रहें तथा स्वस्थ रहें।

जल प्रदूषण के लिए ज़रूरी है स्वच्छ एवं शुद्ध जल का सेवन, जो कीटाणु रहित हो तथा धूल मिट्टी से मुक्त हो। जल को फिटकरी से साफ किया जा सकता है, यदि वह मैला हो। जलदाय विभाग का पानी पीने के योग्य है बशर्ते उसमें कीटाणु इत्यादि न हों तथा आवश्यक दवा (क्लोरीन) का प्रवाह किया गया हो।

ध्वनि प्रदूषण के लिए धीरे बोलें, चिल्लायें नहीं। घर में टी.वी, रेडियो की आवाज़ ज्यादा तेज़ न रखकर धीमे स्वर में सुनें तथा देखे, जिससे दूसरों को कोई असुविधा न हो। वाहनों के संचालन से भी ध्वनि-प्रदूषण तथा वायु-प्रदूषण दोनों होते हैं। अतः शहरों के व्यस्तम इलाको से दूर आवास बनायें तथा खुली हवा में सांस लें।

वर्तमान समय मे कुछ महानगरों में ऑक्सीजन पार्लर भी खुले हैं, जहां

लोगों को कृत्रिम ऑक्सीजन दी जाती है, उनका दावा है कि इससे ताज़गी आती है तथा प्रदूषण के तनाव से छुटकारा मिलता है, परंतु प्रकृति (वृक्ष) से बड़ा कोई नहीं है, जो निःशुल्क तथा प्रचुर मात्रा में शुद्ध हवा हमें देती है, सिर्फ प्रयास तथा लगन की आवश्यकता है।

अत: ज़िंदगी से हताश और निराश न हों, प्रकृति की शरण लें, बागवानी करे, व्यायाम करें, योगाभ्यास करें, हंसे, गुनगुनाएं, मुस्करायें फिर देखिए इससे आपको कितना फायदा होता है, तब आप तनावमुक्त तथा अपने आप को स्वस्थ अनुभव करेंगे। □

तनाव : कारण और निवारण

अक्सर व्यक्ति चिंताग्रस्त होने अथवा इच्छापूर्ति के अभाव में अपना मानसिक संतुलन खो बैठता है, जिसे हम तनाव या बेचैनी(tension) कहते है। तनाव का कारण कुछ भी हो सकता है, जैसे- परीक्षा की कम तैयारी होना अथवा पेपर कठिन आना, बदली (Transfer) हो जाना, प्रमोशन न होना अथवा आशानुरूप विलम्ब से होना, पति अथवा पत्नी का बीमार रहना, बदली (Transfer) होने में विलम्ब होना, घरेलू झगड़े, संपत्ति या परिवार अथवा घर-खर्च आदि पर विवाद होना, संतान न होना अथवा पुत्र का न होना, संतान में अनुशासन कम होना अथवा सलाह न मानना, व्यापार में घाटा होना या व्यापार न चलना आदि। कुछ लोग तनाव का कारण दूसरों को मानते है तो कुछ भाग्य अथवा भगवान को या अन्य किसी को किंतु इस संबंध में एक मत नहीं है। यदि हम गहराई तथा ठंडे दिमाग से सोचें तो मालूम होगा कि जब हमारा मन विकारों से विकृत होता है तो हम अशांत अथवा बेचैन होते हैं। यह विकार चाहे क्रोध हो, लोभ अथवा स्वार्थ हो, भय हो, लालच हो, अहंकार या घमंड हो, ईर्ष्या हो अथवा और कुछ हो, हम इनके फलस्वरूप मानसिक संतुलन खो बैठते है और तनावग्रस्त हो जाते हैं।

विकार क्यो आते है? अधिकांश विकार किसी अप्रिय घटना, जिसे हम नहीं चाहते या नहीं जानते, के घटित होने पर उसकी प्रतिक्रिया-स्वरूप उत्पन्न होते हैं। संसार में यह संभव नहीं है कि हर वस्तु या व्यक्ति हमारे मनपंसद हो जाए और प्रतिकूल परिस्थितियां पैदा ही न हों। हमे सुख-दुःख, लाभ-*हानि, यश-अपयश, मान-अपमान, उतार-चढ़ाव सब अवस्थाओं मे समान* रहना चाहिए परंतु हम चाहकर भी मन को शांत या स्थिर नहीं कर पाते और इस प्रकार आघात मन पर पहुंचने से मन में अनेक विकार अथवा बुरी बाते (भावनाएं) उभर आते है और हमारा चेतन मन अंशात हो जाता है। इस प्रकार

अशांति या तनाव बाहरी घटनाओं के प्रति हमारी भीतरी (आंतरिक) प्रतिक्रिया है, जैसे- बच्चो पर क्रोध, बच्चों के विवाह एवं शिक्षा आदि की चिंता।

गुरुनानक देव जी सिक्ख समुदाय के एक महान संत हुए हैं, जिन्होंने गुरुवाणी का प्रचार-प्रसार किया था। उन्होने कहा है- 'नानक दुखिया सब संसार, जो सुखिया सो नाम आधार।' अर्थात् इस संसार में सब प्राणी दुःखी हैं, कोई भी व्यक्ति पूर्णरूपेण सुखी नही है। प्रभु का स्मरण ही सुखों का मार्ग है। किसी ने ठीक ही कहा है -

कुदरत (प्रकृति) का कानून है, सब पर लागू होय।
मैलो (विकृत) मन दुखिया रहे, निर्मल सुखिया होय।।

तनाव निवारण के उपाय

तनाव के कारणों का विश्लेषण करने के बाद उसको दूर करने के उपायों पर भी विचार करना उपयुक्त होगा। अक्सर देखा तथा सुना जाता है कि लोग तनाव-मुक्ति के लिए नशा का प्रयोग करते हैं, जैसे- शराब, हिरोईन, गांजा, चरस, तम्बाकू आदि, जो स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है तथा पैसे की बर्बादी है। इससे तनाव में कुछ समय के लिए राहत मिल पाती है। अतः तनाव-मुक्ति हेतु निम्न कुछ सुझाव है -

(1) जिस प्रकार का विकार उत्पन्न हो, हम अपने मन को किसी अन्य कार्य मे अथवा चिंतन, उपासना आदि में लगा दें अथवा अपने इष्ट देव या भगवान के नाम का स्मरण करे। जैसे यदि किसी के संतान नही हो पाती तो वह डॉक्टर की जांच कराएं, इलाज लें तथा शेष भगवान पर छोड़ दे। इससे तनाव कम हो सकता है। किसी ने कहा है- जो बस में नहीं वह प्रभु इच्छा पर छोड़ दे तथा सुखी हो। किंतु यह मार्ग क्षणिक समाधान मात्र है, स्थायी नही है।

(2) तनाव-मुक्त होने का दूसरा उपाय है कि हम धैर्य से वस्तुस्थिति का मुकाबला करें तथा विचलित न हों। इसका अभिप्राय है कि किसी भी घटना के कारण जो विकार उत्पन्न होते है उनका हल ढूंढ़ने का प्रयास करे। प्रायः हमारे मन में जब कोई विकार उत्पन्न होता है तो हम बेचैन हो जाते हैं तथा श्वास की गति असाधारण एवं अस्वाभाविक हो जाती है, पसीना आता है और शरीर के अंग-प्रत्यग के सूक्ष्म स्तर पर किसी न किसी प्रकार की

जैव-रासायनिक(Bio-Chemical) या जीव-विद्युतीय (Bio-Electrical) क्रिया होने लगती है, जिसे हम आम भाषा में घबराहट कहते हैं। यदि हम इन क्रियाओं पर नियंत्रण पाने का अभ्यास करें, तो विकार स्वत: क्षीण होने लगेंगे।

(3) तनाव दूर करने का तीसरा उपाय है- अपने शरीर, मन, आत्मा, वाणी तथा भावनाओं का शुद्धिकरण। इसे शरीर का भीतरी संतुलन भी कहा जा सकता है। इनके शुद्ध होने से मन के विकार एवं विचार स्वत: ही शांत एवं निर्मल होंगे तथा आनंद का अनुभव होगा। कहावत है- 'क्षमा बड़न को चाहिए छोटन को उत्पात।' अर्थात् संयमपूर्वक यदि बड़ा या घर का मुखिया छोटों को गलती के लिए क्षमा कर दे तथा भविष्य के लिए सावधान कर दे तो विवाद समाप्त हो सकता है। इसके अंतर्गत प्रमुख रूप से चार बातें सम्मिलित हैं -

(अ) वाणी की पवित्रता : 'ऐसी वाणी बोलिए मन का आपा खोय। औरन को शीतल करें, आपहु शीतल होय।' अक्सर वाणी में विभिन्न दोष मनुष्य को तनाव उत्पन्न करने मे सहायक होते हैं। जैसे- झूठ बोलना, परनिंदा (चुगली) करना, छल-कपट से दूसरों को धोखा देना, कटु-वाणी (गाली-गलौच) बोलकर दूसरे का दिल दुखाना, दो व्यक्तियों में चालाकी से गलत भ्रम पैदा करके दूरी पैदा करना अथवा बढ़ाना तथा स्वार्थ सिद्धि की आशा करना, निरर्थक (फिजूल) बातें करके अपना तथा दूसरे लोगों का समय बर्बाद करना इत्यादि। यदि हम इन बातों से दूर रहें तो वाणी स्वत: शुद्ध एवं निर्मल हो जायेगी और हम तनाव-मुक्त हो सकेंगे। कहावत है- 'वाणी ही मनुष्य को सिंहासन दिला देती है, वाणी ही मनुष्य को जूते (अपमान) दिला देती है।' अत: वाणी की पवित्रता (शुद्धता एवं मिठास) तनावमुक्ति के लिए कारगर उपाय है। कहावत है- 'गुड़ न दे, गुड़ सी बात कह दे।'

'बुरा जो देखन मैं गया, बुरा न मिलिया कोय,
जो मन खोजा आपना मुझसे बुरा न कोय।'

यह दोहा वाणी के लिए भी उपयुक्त कहा जा सकता है अर्थात् बुरे वचनों का उपयोग तनाव पैदा करता है।

(ब) दुष्कर्मों से बचाव : शरीर द्वारा किए जाने वाले दुष्कर्म जैसे- किसी प्राणी की हत्या करना, चोरी करना, व्यभिचार करना, मादक पदार्थों की तस्करी एवं सेवन करना आदि तनाव उत्पन्न करने में सहायक हैं। इनसे बचकर

(स) आजीविका हेतु श्रेष्ठ साधनों का चयन : प्रत्येक व्यक्ति को आजीविका या धनार्जन हेतु कोई न कोई कार्य करना पड़ता है। व्यक्ति जब आजीविका के लिए कोई कुकर्म अथवा गैर-कानूनी कार्य अथवा व्यवसाय करता है, जिससे दूसरों को हानि होती है अथवा कानून का उल्लंघन होता है तो विरोधस्वरूप भय अथवा तनाव का पैदा होना स्वाभाविक है। चोर-डकैत, खूनी छुपते फिरते हैं कि पुलिस पकड़ न ले तथा उन्हें सज़ा न हो जाये। अतः तनाव-मुक्त रहने के लिए हमारी आजीविका का साधन दूसरों को हानि अथवा धोखा देने वाला नहीं होना चाहिए। इससे निश्चित रूप से हम तनाव से मुक्त रह सकेंगे।

(द) मन की शुद्धि : हर कार्य का प्रारम्भ मन से होता है। मन में विचार आने के बाद कार्य करने की योजना बनती है। विचार कर्म में परिणित होता है। अतः यदि मन शुद्ध और विकारमुक्त हो तो अधिकांश तनाव स्वतः समाप्त हो जाते हैं। जैसा व्यवहार आप दूसरों से अपने प्रति नहीं चाहते, वैसा व्यवहार दूसरों के प्रति न करें। यदि कोई जाने-अनजाने में भूल अथवा त्रुटि हो भी गई है तो उसे सहज भाव से स्वीकार कर लें। मन में बुराई का बीज अंकुरित न होने दे। इसके लिए समय-समय पर आत्मनिरीक्षण करें।

तनाव-मुक्ति के उपर्युक्त कुछ उपाय उदाहरणार्थ हैं, समग्र सूची नहीं है। कहावत है- 'आप अच्छा तो जग अच्छा' यानी आपका व्यवहार, भाषा, विचार यदि उत्तम हैं तो सब तरफ से सुख तथा आनन्द ही मिलता है। अहंकार अथवा घंमड का परित्याग भी तनाव कम करता है। सपने संजोयें, जो व्यावहारिक तथा संभव हो, काल्पनिक हवाई किले बनाना तनाव पैदा करता है। कारण व्यक्ति की अपनी सीमाएं है, जैसे- सीमित साधन, सीमित ज्ञान, सीमित शक्ति एवं सामर्थ्य, स्वास्थ्य तथा आयु की सीमा आदि। कहावत है- 'सिकन्दर जब गया दुनिया से दोनों हाथ खाली थे।' अर्थात् विश्व-विजय करने वाले महत्वाकांक्षी व्यक्ति को मृत्यु के पश्चात याद करने वाला कोई नहीं था। रावण के सौ पुत्र थे परतु मृत्यु के समय एक भी पुत्र, भाई, संबंधी उसके पास नहीं था। अतः अहकार का दमन करें, झुक कर चलें तथा चिता एवं तनाव मुक्त हो, व्यर्थ का विवाद पैदा न करे तो सुख ही सुख मिलेगा। इच्छाएं सीमित तथा व्यावहारिक रखें। धरातल पर ही रहें तथा समाजानुसार व्यवहार करना सीखें।

कटु शब्द न बोलें। क्षमा सबसे बड़ा शस्त्र है। पत्थर भी पिघल सकता है। महात्मा गांधी जी ने कहा था- 'यदि कोई मेरे एक गाल पर थप्पड़ मारे, तो मैं दूसरा गाल आगे कर देता हूं और विवाद समाप्त हो जाता है।' अहिंसा के पुजारी का यह कथन तनाव-मुक्ति का एक महत्वपूर्ण साधन है।

योग, व्यायाम आदि करना भी तनाव-मुक्ति में सहायक है। प्रात:काल की सैर मन को लुभावनी लगती है तथा स्वास्थ्य के लिए भी हितकर है। तीर्थ-यात्रा, भम्रण (देश-विदेश का मनोरंजन) भी तनाव मुक्ति के उपाय हैं। अच्छा साहित्य पढ़ना, वाचनालय जाना, मित्रों से गप-शप करना आदि भी तनाव से राहत देते हैं। बच्चों से बतियाना एवं खेलना घर के अन्य कार्य जैसे सब्जी लाना, दूध लाना आदि से भी व्यक्ति का ध्यान दूसरे कार्यों में लगने से तनाव अथवा फिक्र कम होता है तथा राहत मिलती है। □

□□□